॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

क्रोधको जीत लिया है। अब मैं तुमको प्रसन्न होकर वर देता हूँ कि तुम सम्पूर्ण विश्वको प्रिय होओगे, तुम्हारी अक्षयकीर्ति होगी। तुमने पूरे शरीरमें खीर लगायी है, अतः तुम्हारा शरीर समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य रहेगा। किंतु तुमने पैरके तलवेमें खीर क्यों नहीं लगायी? बस, केवल ये तुम्हारे पादतल निर्भय नहीं बन सके। तत्पश्चात् श्रीरुक्मिणीजीसे बोले—कल्याणी! तुमको रोग तथा जरा नहीं स्पर्श करेगी। तुम्हारी अंगकान्ति कभी म्लान नहीं होगी। इतना कहकर महर्षि अन्तर्धान हो गये। श्रीरुक्मिणीजीको साथ लेकर श्रीकृष्ण घर आये तो देखा कि मुनिके द्वारा जलायी अथवा नष्ट की हुई सभी वस्तुएँ सुरक्षित हैं। ऐसे ही आपके अनेकों चरित्र हैं।

अट्ठासी हजार ऋषिगण

ये ऋषिगण श्रीशौनकजीके साथ रहते थे। ये सभी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी थे। सूतजीके मुखसे इन लोगोंने पुराणोंका श्रवण किया था। ये ऋषिगण हजारों वर्षोंका श्रवण सत्र करते थे। कलियुगको आया देखकर इन ऋषियोंने श्रीशौनकजीको अपना प्रधान बनाकर नैमिषारण्यमें दीर्घकालीन सत्र किया और भगवान्‌की कथाओंका आनन्द लिया। ये लोग हवन आदि नित्यकर्म करके कथा-श्रवणके लिये बैठ जाते और प्रायः सारा समय श्रीसूतजीके मुखारविन्दसे भगवत्कथामृतका श्रवणपुटपान करनेमें ही व्यतीत करते थे। पुराणोंमें आये विविध विषयोंका मनुष्यमात्रको ज्ञान करानेके लिये ही इन करुणापरायण ऋषियोंने यह उपक्रम किया था।

श्रीजाबालिजी

ये एक ब्रह्मर्षि हैं। ये धर्म और नीतिमें बड़े ही निपुण थे, चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीदशरथजी इनसे मन्त्रणा लिया करते थे। ये उनके यहाँ मन्त्रि-पदपर प्रतिष्ठित थे। श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणमें वर्णन आता है कि जब श्रीभरतलालजी श्रीरामजीको मनाने चित्रकूट गये थे तो ये साथ थे। वहाँपर इन्होंने बड़े ही चातुर्यपूर्ण ढंगसे श्रीरामजीके श्रीमुखसे परमार्थका विवेचन सुननेकी लालसासे स्वार्थको प्राधान्य देते हुए श्रीरामसे घर लौटनेका आग्रह किया है। नीति-प्रीति-परमार्थ-स्वार्थ सुजान श्रीरामजीने मुनिके भावको जानकर बड़े ही शास्त्रानुमोदित ढंगसे परमार्थका निरूपण किया है।

महर्षि जमदग्नि

विश्वामित्रजीके पिताका नाम गाधि था। गाधि बड़े ही धर्मात्मा राजा थे। उनके सत्यवती नामकी एक कन्या थी। कन्या जब विवाहयोग्य हुई तो महर्षि ऋचीक महाराजके पास आये। ऋचीकमुनिने राजासे सत्यवतीकी याचना की। अरण्यवासी वृद्ध ऋषिको देखकर राजा दुखी हुए। अपनी प्यारी कन्याको ऋषिको कैसे दें? न दें तो ऋषि शाप दे देंगे। अतः उन्होंने कहा—'भगवन्! हमारे वंशमें ऐसी प्रथा है कि कन्याके पतिसे कुछ शुल्क लेते हैं, आप यदि एक हजार श्यामकर्ण सफेद घोड़े हमें दें तो आपके साथ हम अपनी कन्याका विवाह कर दें।' ऋषि राजाके अभिप्रायको समझ गये, वे योगबलसे वरुणके पास गये और उनसे एक हजार श्यामकर्ण घोड़े लाकर राजाको दे दिये। राजाने विधिपूर्वक सत्यवतीका ऋचीक महामुनिके साथ विवाह कर दिया।

महाराज गाधिके कोई पुत्र नहीं था। सत्यवतीकी माताने अपनी लड़कीसे कहा—'तेरे पति सर्वसमर्थ ऋषि हैं, उनसे ऐसा वरदान माँग कि तेरे भाई हो जाय।' सत्यवतीने अपनी माताकी प्रार्थना ऋचीकमुनिसे कही और अपने भी एक पुत्र हो—ऐसी इच्छा प्रकट की। ऋषिने दो चरु मन्त्रबलसे तैयार किये। एकमें तो क्षात्रधर्मवाली शक्ति स्थापित की और अपनी पत्नीके लिये ब्रह्मशक्ति। दोनों चरु वे अपनी पत्नीको देकर चले गये। माताने समझा कन्यावाला चरु अच्छा होगा, अतः उसने अपनी कन्यावाला चरु खा लिया और

कन्याने मातावाला। ऋषिको जब मालूम हुआ तो उन्होंने कहा—'तेरी माताके ब्राह्मण तेजवाला पुत्र होगा और तेरे पुत्र होना चाहिये क्षत्रियकर्मवाला किंतु पुत्र ऐसा न होकर पौत्र ऐसा होगा।' माताके गर्भसे जो पुत्र हुआ, वह विश्वामित्र मुनि हुए, जो क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हुए और सत्यवतीके महर्षि जमदग्नि हुए, उनके पुत्र परशुरामजी ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियकर्मवाले हुए।

महर्षि जमदग्नि सदा तपस्यामें ही लगे रहते थे। वैदिक कर्मोंको करते रहना ही उनका कार्य था। एक बार सहस्रार्जुन शिकार खेलते हुए महर्षि जमदग्निके आश्रमपर आ पहुँचे। राजाको देखकर ऋषिने शास्त्रकी विधिसे उनका सत्कार किया और सेनासहित उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया। महर्षि जमदग्निने अपनी तपस्याके प्रभावसे कामधेनुद्वारा सम्पूर्ण सेनाको भाँति-भाँतिके भोजनोंसे सन्तुष्ट किया। कामधेनुकी ऐसी करामात देखकर राजाने उसे महर्षिसे माँगा। ऋषिने कहा—'राजन्! मेरे समस्त यज्ञ-यागके कार्य इसी कामधेनुपर निर्भर हैं। इसे मैं देकर कर्महीन बन जाऊँगा।' राजाने नहीं माना, वे गौको जबरदस्ती लेकर चले गये। महर्षि चुपचाप बैठे रहे। जब इनके पुत्र परशुरामजीने यह सुना तो वे फरसा लेकर माहिष्मती नगरीमें गये और सहस्रार्जुनको मारकर गौ ले आये और आकर पितासे सब हाल सुनाया। इस बातको सुनकर महर्षि जमदग्नि बड़े दुखी हुए। उन्होंने अत्यन्त दुःखके साथ कहा—

राम राम महाबाहो भवान् पापमकारषीत्। अवधीन्नरदेवं यत् सर्वदेवमयं वृथा॥
वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः। यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात् पदम्॥

हे महाबाहो परशुराम! तुमने यह अच्छा नहीं किया कि सर्वदेवमय राजाका वध कर डाला। हम ब्राह्मणोंका एकमात्र धन क्षमा ही है। बेटा! क्षमाके ही कारण हम ब्राह्मण जगत्पूज्य हैं। इस क्षमाके ही गुणके कारण लोकपितामह ब्रह्मा जगद्गुरु होकर परमेष्ठी-पदको प्राप्त हुए हैं।

परम क्षमाशील महर्षि जमदग्नि सुखपूर्वक अपने आश्रममें रहने लगे। उस समयके प्रायः समस्त राजा दुष्ट हो गये थे। राजाओंके रूपमें सभी असुर उत्पन्न हुए थे। सहस्रबाहुके दुष्ट पुत्रोंने तपस्यामें लगे हुए महर्षि जमदग्निका सिर काट लिया और इससे वे दुष्ट प्रसन्न हुए। ऋषिके लिये इसमें दुःखकी कोई बात नहीं थी। वे स्वर्गमें जाकर सप्तर्षियोंके साथ बड़े सुखसे रहने लगे। जमदग्नि सप्तर्षियोंमेंसे ही एक ऋषि हैं।

पिताकी मृत्युकी बात सुनकर परशुरामजी अपने क्रोधको नहीं रोक सके और पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये उन्होंने कई बार क्षत्रियवंशका नाश किया।

महर्षि जमदग्निकी क्षमा, कार्यतत्परता और अतिथिसत्कार ऐसे गुण हैं, जो समस्त मानवजातिके लिये आदर्श हैं। वे क्षमाकी तो मूर्ति ही थे।

श्रीमायादर्श (मार्कण्डेयजी)

मार्कण्डेयमुनि महर्षि मृकण्डुके पुत्र थे। ये भृगुकुलमें उत्पन्न हुए थे। यज्ञोपवीत-संस्कार हो जानेपर ये ब्रह्मचर्यव्रतको धारणकर वेदाध्ययन करने लगे और वेदपारंगत होकर तप और स्वाध्यायमें लग गये। वे ब्रह्मचारी-वेषमें रहकर अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें श्रीहरिका पूजन करने लगे। वे प्रातःकाल और सायंकाल भिक्षा माँगकर लाते और गुरुको अर्पण करते और गुरुकी आज्ञा मिलनेपर मौन होकर एक समय भोजन करते। गुरुकी आज्ञा न मिलनेपर ये किसी-किसी दिन निराहार ही रह जाते थे। इस प्रकार मार्कण्डेयमुनिने दस करोड़ वर्षपर्यन्त श्रीहरिकी आराधना करके दुर्जेय कालको भी जीत लिया। उनके इस प्रकार मृत्युको जीत लेनेपर ब्रह्मा, शिव, भृगु, दक्ष और नारदादिको बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर तथा इन्द्रियजयके द्वारा अन्तःकरणको रागादि दोषोंसे रहितकर भगवान् अधोक्षजका

ध्यान करते हुए मुनिको छः मन्वन्तर (१७०४ युगोंकी चौकड़ी)-का काल बीत गया। वैवस्वत नामक सातवें मन्वन्तरमें इस मन्वन्तरमेंके पुरन्दर नामक इन्द्रने इस भयसे कि ये कहीं मेरे पदको न छीन लें, इनके तपमें विघ्न करनेका निश्चय किया। उसने इन्हें तपसे डिगानेके लिये गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव, वसन्त ऋतु, मलयानिल तथा लोभ और मदको भेजा। ये लोग हिमालयके उत्तरकी ओर पुष्पभद्रा नदीके तटपर अवस्थित मुनि मार्कण्डेयके आश्रममें पहुँचे और सब लोग मिलकर मुनिके ध्यानको भंग करनेकी चेष्टा करने लगे। परंतु इन सबके प्रयत्न भाग्यहीनके उद्योगकी भाँति सर्वथा निष्फल हुए और ये सब उन तेजस्वी मुनिके तेजसे जलने लगे। अन्ततः जिस प्रकार किसी विषधर सर्पको छेड़कर बालक भयसे पीछे हट जाते हैं, उसी प्रकार ये इन्द्र-दूत निराश होकर वहाँसे लौट गये। इन्द्र उन सबको हतप्रभ एवं म्लानमुख देखकर तथा उनसे उन ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर परम विस्मित हुए। ऋषिके तपसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि उनपर अनुग्रह करनेके निमित्त नर-नारायणके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए।

उन तपोमूर्ति ऋषिप्रवरोंको देखते ही मुनि उनके चरणोंमें लोट गये और उनकी स्तुति करने लगे। भगवान् नारायण बोले—'हे ऋषिश्रेष्ठ! तुम्हारी निर्दोष भक्तिसे हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अतः तुम हमसे इच्छित वर माँगो।' ऋषि बोले—'भगवन्! आपने कृपा करके मुझे अपने सुर-मुनिदुर्लभ दर्शनसे कृतार्थ किया; इससे बढ़कर मैं कौन-सा वर आपसे माँगूँ? तथापि मेरी इच्छा है कि जिस आपकी मायासे यह सत् वस्तु भेदयुक्त प्रतीत होती है, उस मायाको मैं देखना चाहता हूँ।' नर-नारायण 'तथास्तु' कहकर बदरिकाश्रमको चले गये। इधर ऋषि यह सोचते हुए कि उस मायाका दर्शन मुझे कब होगा, अपने आश्रममें ही रहकर अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, भूमि, वायु, आकाश और आत्मामें तथा अन्यत्र सब जगह सर्वव्यापी श्रीहरिका ध्यान करते हुए मानसिक उपचारोंसे उनका पूजन करने लगे।

× × ×

सायंकालका समय है। मुनि नदी-तटपर सन्ध्या कर रहे हैं। इतनेमें वे क्या देखते हैं कि अकस्मात् वायु बड़े जोरसे चलने लगा। उस प्रचण्ड वायुके साथ ही आकाशमें भयानक मेघ घुमड़ आये और उनमें बिजलीकी चमकके साथ कड़कड़ाहटका शब्द होने लगा। देखते-देखते मूसलाधार वृष्टि शुरू हो गयी। इधर चारों समुद्र बड़े प्रचण्ड वेगके साथ भूमण्डलको ग्रास करते हुए दिखायी देने लगे और बात-की-बातमें सर्वत्र जल-ही-जल हो गया। सप्तद्वीप, नवखण्ड तथा सप्त कुलाचलोंसहित समस्त पृथ्वीमण्डल ही नहीं, अपितु आकाश, स्वर्ग, तारागण और दिशाओंसहित सारी त्रिलोकी जलमग्न हो गयी। उस अनन्त महार्णवमें अकेले मार्कण्डेय ही रह गये। वे जटाओंको बिखेरकर बावले और अन्धेके समान इधर-उधर भटकने लगे। बड़े-बड़े मगर उनकी देहको नोचने लगे तथा वायुके प्रबल झकोरों एवं उत्ताल तरंगोंके थपेड़ोंसे उनका शरीर जर्जर हो गया। इधर भूख-प्यास उन्हें अलग सताने लगी। सर्वत्र घोर अन्धकार छा जानेके कारण उन्हें कुछ नहीं सूझता था। उन्हें कभी शोक होता, कभी मोह होता, कभी सुखकी अनुभूति होती और कभी मृत्युके समान कष्ट होता। इस प्रकार विष्णुकी मायासे मोहित हुए मुनिको उस समुद्रमें भ्रमण करते एक शंख वर्ष बीत गये। इस बीचमें उस महान् जलराशिके किसी कोनेमें पृथ्वीका कुछ भाग दिखलायी देने लगा और उसपर फलों और पत्तोंसे लदा हुआ वट (बरगद)-का एक छोटा-सा पौधा दिखायी दिया। साथ ही उसके ईशानकोणकी शाखाके एक पर्णपुट (दोने)-में सोया हुआ एक तेजस्वी बालक दीख पड़ा। उसके प्रकाशसे सभी दिशाएँ आलोकित हो उठीं। उसका मरकतमणिके सदृश श्यामवर्ण, शोभायमान मुखकमल, शंखके समान बल पड़ी हुई ग्रीवा, विशाल वक्षःस्थल, सुन्दर नासिका और धनुषके समान भौंहें

मनको मोहे लेती थीं, उसके दोनों कानोंमें दाड़िमके फूल खोंसे हुए थे। वह अपने सुन्दर हाथोंसे अपना चरण पकड़कर उसका अँगूठा चूस रहा था।

उस मनोहरमूर्ति बालकको देखकर मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके दर्शनमात्रसे उनकी सारी व्यथा दूर हो गयी और मारे आनन्दके उन्हें रोमांच हो आया। वे खिसककर उस बालकके समीप चले गये। ज्यों ही वे उसके समीप गये, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उस बालकके श्वासके साथ वे उसके उदरके भीतर मच्छरकी भाँति खिंचे चले जा रहे हैं। थोड़ी ही देरमें उन्होंने अपनेको उस बालकके उदरके भीतर पाया। वहाँ उन्होंने सारे जगत्‌को उसी रूपमें पाया, जिस रूपमें उन्होंने प्रलयके पूर्व उसे बाहर देखा था। यह सब दृश्य देखकर उन्हें परम विस्मय हुआ। कुछ क्षणके अनन्तर वे उसी बालकके श्वासके द्वारा प्रेरित होकर बाहर निकल आये और पुनः उसी प्रलयसमुद्रमें जा पड़े। बाहर निकलकर उन्होंने उस बालकको उसी अवस्थामें अपनी ओर प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे देखते हुए पाया। उसकी मन्द मुसकानसे आकर्षित होकर वे उसके समीप जाकर उसे आलिंगन करना ही चाहते थे कि वे योगाधिपति बालवेशधारी भगवान् एकाएक अन्तर्धान हो गये, उनके अन्तर्धान होते ही वह वटवृक्ष और वह प्रलयसमुद्र सारा-का-सारा क्षणभरमें विलीन हो गया और मुनि अपने आश्रममें पूर्ववत् स्थित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् नारायणकी मायाको प्रणाम किया और हृदयसे उन मायेश्वरकी शरण हो गये।

× × ×

एक समय मुनि समाधि लगाये अपने आश्रममें बैठे थे। इतनेमें देवाधिदेव भगवान् शंकर जगज्जननी पार्वतीके साथ नन्दीपर सवार होकर आकाशमार्गसे उधरकी ओर निकले। मुनिको शान्तभावसे बैठे देखकर पार्वतीजी भगवान् शंकरसे बोलीं—'भगवन्! ये कोई महातपस्वी मुनि मालूम होते हैं। इन्हें सिद्धि प्रदान कीजिये; क्योंकि सारी तपस्याओंको सिद्ध करनेवाले आप ही हैं।' शंकरजी बोले—'हे पार्वति! ये मार्कण्डेय मुनि भगवान् पुरुषोत्तमके बड़े भक्त हैं, अतएव ये तपके द्वारा कोई सिद्धि नहीं चाहते। अधिक क्या कहें, इन्हें मोक्षकी भी परवा नहीं है, फिर सांसारिक सुखोंकी तो बात ही क्या है? तथापि हे पार्वति! हम चलकर थोड़ी देर इनसे वार्तालाप करें, क्योंकि साधुसमागमसे बढ़कर संसारमें कोई लाभ नहीं है।' यह कहकर जगन्नियन्ता भगवान् शंकर मुनिके समीप गये। किंतु मुनिकी वृत्तियाँ ब्रह्ममें लीन होनेके कारण उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया था, अतएव उन्हें जगदात्मा शिव-पार्वतीके आनेका पता नहीं लगा। यह देखकर भगवान् शंकर अपनी योगमायाके प्रभावसे मुनिकी हृदयगुहामें प्रविष्ट हो गये। मुनिने देखा कि उनके हृदयमें एकाएक एक पीली जटाओंवाली, त्रिशूल, धनुष-बाण तथा ढाल-तलवारसे सुसज्जित, शरीरमें व्याघ्रचर्म लपेटे, रुद्राक्षमाला, डमरू, नरकपाल और फरसा धारण किये, तीन नेत्र और दस भुजाओंवाली मूर्ति प्रकट हो गयी। इस विकराल मूर्तिको हृदयस्थित देखकर मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ और इसी आश्चर्यमें उनकी समाधि टूट गयी। मुनिने आँख खोलकर देखा तो सामने भगवान् रुद्र पार्वतीसहित अपने गणोंको साथ लिये खड़े हैं। मुनिने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और पार्वतीसहित उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की। उनकी पूजासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर बोले—'हे मुने! हम तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हैं, अतः हमसे इच्छित वर माँगो। ब्रह्मा, विष्णु और मैं—तीनों ही वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। तुम्हारी तरह जो लोग हम तीनोंकी समानभावसे भक्ति करते हैं तथा जो शान्त, निःसंग, निर्वैर, प्राणीमात्रके प्रति दया करनेवाले और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले हैं, उनकी इन्द्रादि लोकपाल ही नहीं, अपितु हम तीनों भी वन्दना और सेवा-पूजन करते हैं; क्योंकि आपलोग हम तीनोंमें, अपनेमें तथा जगत्‌के अन्य प्राणियोंमें अणुमात्र भी भेद नहीं देखते। अतएव हम लोग आप-

जैसे ब्राह्मणोंका भजन किया करते हैं। तीर्थ और देवता तो चिरकालपर्यन्त सेवा करनेपर फल देते हैं, किंतु आप-जैसे साधुपुरुष तो दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ कर देते हैं। जो तुम्हारी भाँति चित्तको एकाग्र करके तप, स्वाध्याय और संयममें रत रहते हैं, उन ब्राह्मणोंको हम सदा नमस्कार किया करते हैं। आपसदृश महानुभावोंके दर्शन अथवा नाम सुननेमात्रसे ही महापातकी और चाण्डाल भी शुद्ध हो जाते हैं। फिर जिन्हें आप लोगोंके साथ सम्भाषण आदिका सौभाग्य प्राप्त होता है, उनकी तो बात ही क्या है?'

भगवान् शंकरके इन वचनोंको सुनकर ऋषि गद्गद हो गये। वे बोले—'भगवन्! मैं तो आपके दर्शनमात्रसे कृतार्थ हो गया और वरदान क्या माँगूँ? तथापि आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी भगवान् अच्युत और उनके भक्तोंमें तथा आपमें अनन्य भक्ति हो।' शंकरजी बोले—'हे विप्रवर! तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण हो। इस कल्पके अन्ततक तुम्हारी कीर्ति अटल रहेगी और तुम अजर, अमर होकर रहोगे। तुम्हें त्रिकालविषयक ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और पुराणोंका आचार्यत्व प्राप्त होगा।' यह कहकर भगवान् शंकर वहाँसे चले गये और महामुनि मार्कण्डेय योगका महान् सामर्थ्य तथा भगवान् जनार्दनकी एकान्त भक्ति प्राप्तकर भूलोकमें विचरने लगे और अब भी उसी प्रकार विचरते हैं। वे लोकमें 'चिरंजीव' के नामसे विख्यात हुए।

बृहन्नारदीयपुराणके अनुसार महर्षि मृकण्डुके तपसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने ही पुत्ररूपमें उनके यहाँ जन्म ग्रहण किया था।

श्रीकश्यपजी

समस्त लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माने ही इस चराचर सृष्टिको उत्पन्न किया है। सृष्टिकी इच्छासे उन्होंने छः मानसिक पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु हैं। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षप्रजापतिने अपनी तेरह कन्याओंका विवाह इनके साथ कर दिया। उनके नाम ये हैं—अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कद्रू। इन सबकी इतनी संतानें हुईं कि उन्हींसे यह सम्पूर्ण सृष्टि भर गयी। अदितिसे समस्त देवता तथा बारह आदित्य हुए। सभी दैत्य दितिके पुत्र हैं। दनुके दानव हुए। काला और दनायुके भी दानव ही हुए। सिंहिकासे सिंह, व्याघ्र हुए। क्रोधाके क्रोध करनेवाले असुर हुए। विनताके गरुड, अरुण आदि छः पुत्र हुए। कद्रूके सर्प, नाग आदि हुए। मनुसे समस्त मनुष्य उत्पन्न हुए। इस प्रकार समस्त स्थावर-जंगम, पशु-पक्षी, देवता-दैत्य, मनुष्य हम सब सगे भाई-भाई हैं। एक कश्यपभगवान्की ही हम संतान हैं। वृक्ष, पशु, पक्षी हम सब कश्यपगोत्रीय ही हैं।

इन तेरह कन्याओंमें अदिति भगवान् कश्यपकी सबसे प्यारी पत्नी थी। उन्हींसे इन्द्रादि समस्त देवता हुए और भगवान् वामनने भी इन्हींके यहाँ अवतार लिया। इनका तप अनन्त है, इनकी भगवद्भक्ति अटूट है। ये दम्पती भगवान्के परमप्रिय हैं। तीन बार भगवान्ने इनके घरमें अवतार लिया। अदिति और कश्यपके महातपके प्रभावसे ही जीवोंको निर्गुणभगवान्के सगुणरूपमें दर्शन हो सके।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥

भगवान् जिनके पुत्र बने, उनके विषयमें अधिक क्या कहा जा सकता है? भगवान् कश्यपकी पुराणोंमें बहुत-सी कथाएँ हैं; उनमेंसे वामन, बलि, अदिति आदिके प्रसंगमें बहुत-सी आ गयी हैं। अतः उनके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये महानुभाव भगवान्को निर्गुणसे सगुण साकार बनानेवाले हैं, तथा हम सब जीवोंके आदि पिता हैं।

श्रीपर्वतजी

इनकी देवर्षियोंमें गणना है। महाभारतमें इनका और श्रीनारदजीका अनेक स्थलोंपर साथ-साथ वर्णन पाया जाता है। श्रीनारदजीकी ही तरह ये भी विचरणशील स्वभावके हैं। लिंगपुराण एवं अद्‌भुत रामायणमें कथा आती है कि एक बार श्रीनारदजी और श्रीपर्वतजी—दोनों मित्र साथ-साथ विचरते हुए श्रीनगरके राजा अम्बरीषजीके यहाँ गये। राजाने इनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और अपनी लाडिली बेटी, जिसका नाम श्रीमती था, उसको बुलाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराकर, उसके भाग्यके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। दोनों ही मुनि श्रीमतीके सुन्दर रूप एवं शुभ लक्षणोंपर मोहित होकर उसको पृथक्-पृथक् राजासे माँगने लगे। राजाका यह उत्तर मिलनेपर कि कन्या जिसको जयमाल पहना दे, वही ले जाय; दोनों पृथक्-पृथक् भगवान्‌के यहाँ गये और दोनोंने ही उनसे सब वृत्तान्त कहकर अपना-अपना मनोरथ प्रकट किया। नारदजीने पर्वतऋषिका मुख बन्दरका-सा और पर्वतने नारदमुनिका मुख लंगूरका-सा कर देनेके लिये पृथक्-पृथक् प्रार्थना की और साथ ही यह भी प्रार्थना की कि राजकुमारीको ही वह रूप दीख पड़े, दूसरेको नहीं।

भगवान्‌ने दोनोंसे '*एवमस्तु*' कहा। तत्पश्चात् दोनों ही राजाके यहाँ गये। राजाने बुलाकर कहा कि दोनों ऋषियोंमेंसे जिसे चाहो, उसे जयमाल पहना दो। कन्या जयमाल लिये खड़ी है। उसे वहाँ एक बन्दर, एक लंगूर और एक सुन्दर धनुष-बाणधारी पुरुष दीख पड़े। ऋषि कोई न देख वह ठिठककर रह गयी। संकोचका कारण पूछे जानेपर उसे जो दीख रहा था, वह उसने कह दिया और जयमाल धनुषधारी पुरुष (भगवान् श्रीराम)-के गलेमें डाल दिया। भगवान् उसे लेकर अन्तर्धान हो गये। इस रहस्यको न समझकर दोनों ऋषि भगवान्‌के पास गये और उपालम्भ दिये। भगवान्‌ने कहा कि हम भक्तपराधीन हैं, तुम दोनों ही हमारे भक्त हो, अतः हमने दोनोंका कहा किया। ऋषियोंको जब यह मालूम हुआ कि ये ही कन्याको ले गये। दोनोंने ही उनको शाप दिया कि—'***मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥ कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥***' बादमें जब इन्हें आत्मस्वरूपका ज्ञान हुआ है तो ये बहुत ही पश्चात्ताप किये हैं और भगवान्‌से शापके मिथ्या हो जानेकी प्रार्थना किये हैं। परंतु भगवान्‌ने शापको अपनी इच्छा कहकर दोनोंको समझा-बुझाकर विदा किया।

श्रीपराशरजी

ये ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीके पौत्र, महर्षि शक्तिजीके पुत्र एवं भगवान् वेदव्यासजीके पिता हैं। इनकी माताका नाम अदृश्यन्ती था। इन्होंने बारह वर्षोंतक माताके गर्भमें ही रहकर वेदाभ्यास किया था। इनके द्वारा रचित '*पराशरस्मृति*' में धर्माधर्मका बड़ा विवेकपूर्ण निर्णय किया गया है। धर्मके सम्बन्धमें इनका कथन है कि जो मनुष्य परमदुर्लभ मानव जन्मको पाकर भी कामपरायण हो दूसरोंसे द्वेष करता है और धर्मकी अवहेलना करता है, वह महान् लाभसे वंचित रह जाता है। यथा—'**यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः। धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वंच्यते॥**' (म०भा०) भगवत्स्मरणकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि—'**प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यःपापक्षयान्नरः॥**' (विष्णु० २।६।४१) अर्थ—प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें अथवा मध्याह्नमें, किसी भी समय श्रीनारायणका स्मरण करनेसे पुरुषके समस्त पाप तत्काल क्षीण हो जाते हैं।

अठारह पुराण

ब्रह्म बिष्नु सिव लिंग पद्म अस्कँद बिस्तारा।
बामन मीन बराह अग्नि कूरम ऊदारा॥

गरुड़ नारदी भविष्य ब्रह्मबैबर्त श्रवन सुचि।
मार्कंडेय ब्रह्मंड कथा नाना उपजै रुचि॥
परम धर्म श्रीमुख कथित चातुश्लोकी निगम सत।
साधन साध्य सत्रह पुरान फलरूपी श्रीभागवत॥ १७॥

ब्रह्म, विष्णु, शिव, लिंग, पद्म, स्कन्द, वामन, मत्स्य, वराह, अग्नि, कूर्म, गरुड, नारद, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड—इन सभी पुराणोंमें विशेषतया श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्‌के श्रीमुखसे परमधर्म कहा गया है। श्रीमद्भागवतमें चतुःश्लोकी सभी वेदोंका सार है। अठारहों पुराण विस्तृत हैं, उदार हैं। इनके सुननेसे अन्तःकरण पवित्र होता है, इनमें अनेक प्रकारकी कथाओंका वर्णन है, जिनसे इष्टदेवमें रुचि उत्पन्न होती है, ये ब्रह्मपुराण आदि सत्रह पुराण साधन हैं और श्रीमद्भागवत पुराण साध्य है, पुराणोंमें यह फलरूप है॥ १७॥

अष्टादश पुराण

संस्कृत साहित्यमें पुराणोंका एक विशेष स्थान है। वेदोंके बाद इन्हींकी मान्यता है। महाभारतके साथ पुराणोंको पंचम वेद कहा गया—'**इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥**' समष्टिरूपमें पुराणोंको प्राचीन भारतकी धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्कृतिका लोकसम्मत विश्वकोष ही समझना चाहिये।

पुराणका शाब्दिक अर्थ तो 'प्राचीन कथा' अथवा 'प्राचीन विवरण' है, परंतु धर्मग्रन्थके रूपमें जिन पुराणोंकी चर्चा आती है, उनके निम्नलिखित पाँच लक्षण हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (लय और पुनः सृष्टि), वंश (देवताओंकी वंशावली), मन्वन्तर (मनुओंके काल-विभाग) और वंशानुचरित (राजाओंके वंशवृत्त)—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं। पुराणोंमें १८ महापुराणों और १८ उपपुराणोंकी गणना होती है। निम्नलिखित श्लोकमें पुराणकी नामावली संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥

(श्रीमद्देवी० १।३।२)

अर्थात् 'म' वाले (मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण) दो, 'भ' वाले (भविष्यपुराण तथा भागवत) दो, 'ब्र' वाले (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्तपुराण) तीन, 'व' वाले (वामन, वायु, विष्णु और वाराहपुराण) चार, 'अ' वाला (अग्निपुराण), 'ना' वाला (नारदपुराण), 'प' वाला (पद्मपुराण), 'लिं' वाला (लिंगपुराण), 'ग' वाला (गरुडपुराण), 'कू' वाला (कूर्मपुराण) और 'स्क' वाला (स्कन्दपुराण)—ये पृथक्-पृथक् अठारह पुराण हैं।

इनकी श्लोक-संख्या इस प्रकार वर्णित की गयी है—

चतुर्दशसहस्त्रं च मत्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम्। तथा ग्रहसहस्त्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम्॥
चतुर्दश सहस्त्राणि तथा पञ्चशतानि च। भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
अष्टादशसहस्त्रं वै पुण्यं भागवतं किल। तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम्॥

द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम्। तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च॥
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च। चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्। चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम्॥
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम्। पञ्चविंशति साहस्रं नारदं परमं मतम्॥
पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम्। एकादशसहस्राणि लिंगाख्यं चातिविस्तृतम्॥
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम्। सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम्॥
एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम्।

(श्रीमद्देवी० १।३।३—१२)

अर्थात् आदिके मत्स्यपुराणमें चौदह हजार, अत्यन्त अद्भुत मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार तथा भविष्यपुराणमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक-संख्या तत्त्वदर्शी मुनियोंने बतायी है। पवित्र भागवतपुराणमें अठारह हजार और ब्रह्मपुराणमें दस हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार एक सौ तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं। वामनपुराणमें दस हजार तथा वायुपुराणमें चौबीस हजार छः सौ श्लोक हैं। परमविचित्र विष्णुपुराणमें तेईस हजार, वाराहपुराणमें चौबीस हजार, अग्निपुराणमें सोलह हजार तथा नारदपुराणमें पचीस हजार श्लोक कहे गये हैं। विशाल पद्मपुराणमें पचपन हजार और लिंगपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। भगवान् श्रीहरिके द्वारा कहे हुए गरुडपुराणमें उन्नीस हजार तथा कूर्मपुराणमें सत्रह हजार श्लोक हैं। परम अद्भुत स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या इक्यासी हजार कही गयी है।

उक्त पुराणोंमें मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द तथा अग्नि—ये छः पुराण तामस; ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्राह्म—ये छः पुराण राजस और विष्णु, नारद, गरुड, पद्म, वाराह एवं भागवत पुराण सात्त्विक पुराण हैं। सात्त्विक पुराणोंमें भगवान् श्रीहरिका यश विशेष रूपसे वर्णित रहता है। इस आधारपर श्रीमद्भागवत अन्य पुराणोंसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है; क्योंकि उसका प्रत्येक स्कन्ध भगवान् श्रीहरिका अंग कहा गया है। कौशिकसंहितान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें भगवान् श्रीहरिके अवयवोंकी भागवतके स्कन्धोंके साथ एकरूपता इस प्रकार दर्शायी गयी है—

पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमस्कन्ध ईरितः। तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम्। पञ्चमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सबाहुकम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमो मुखमुच्यते। अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलौ भ्रुकुटिः परः॥
दशमो ब्रह्मरन्ध्रं च मन एकादशः स्मृतः। आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः॥

अर्थात् श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहका पैरसे लेकर जानुपर्यन्त श्रीमद्भागवतका प्रथम स्कन्ध है, जानुसे कटिपर्यन्त दूसरा स्कन्ध, तीसरा स्कन्ध नाभि, चौथा स्कन्ध उदर, पाँचवाँ स्कन्ध हृदय, छठा स्कन्ध बाहुसहित कण्ठ, सातवाँ स्कन्ध मुख, आठवाँ स्कन्ध नेत्र, नवाँ स्कन्ध कपोल एवं भ्रुकुटि, दसवाँ स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र, ग्यारहवाँ स्कन्ध मन और बारहवाँ स्कन्ध आत्मा कहा गया है।

पुराणोंके श्रवणकी बहुत महिमा है। पुराणोंका प्रतिपादन आख्यानशैलीमें है। इसीलिये ये परम रोचक और शीघ्र प्रभाव डालते हैं। पुराणोंमें वेदोंके ही अर्थोंका उपबृंहण हुआ है। **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थ-मुपबृंहयेत्।'** वेदमें जहाँ **'सत्यं वद'** आदि उपदेश आये हैं, पुराणोंने इन उपदेशोंको राजा हरिश्चन्द्र आदिके आख्यानसे कथारूपमें प्रस्तुत किया है। पुराण हमें सच्चे मित्रकी भाँति कल्याणकारी परामर्श प्रदान करते हैं। पुराण श्रीवेदव्यासजीकी कृतियाँ हैं। यह व्यासजीका लोकपर महान् अनुग्रह है। आत्मकल्याण तथा

भगवत्प्राप्तिके साधनोंका जैसा समावेश पुराणोंमें हुआ है, वैसा वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। मुख्य तथा अवान्तररूपसे भगवच्चर्चा ही पुराणोंका अन्यतम प्रतिपाद्य है। आख्यानों, उपाख्यानों तथा गाथाओंके द्वारा पुराणोंमें उसी परम प्रभुकी महिमाका गान हुआ है। इनमें लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान-विज्ञानके सभी विषय भरे पड़े हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतपुराण साक्षात् भगवान्का स्वरूप है, भगवान्की वाङ्मयी मूर्ति है। भागवतके श्रवण एवं पारायणकी अद्भुत महिमा है। शुकदेवजी इसकी अतुलनीय महिमाका बखान करते हुए कहते हैं—भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है, जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है। यह भागवतशास्त्र भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला और नित्य प्रेमानन्दरूप फल प्रदान करनेवाला है—**'कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत् प्रेमानन्दफलप्रदम्॥'** ब्रह्म, पद्म आदि सत्रह पुराणोंको साधनरूप और भागवतको साध्य एवं फलरूप बताया गया है। इसीसे भक्त-भागवतगण इसकी भगवद्भावनासे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा किया करते हैं। भगवान् वेदव्यास-सदृश महापुरुषको जिसकी रचनासे ही परम शान्ति मिली, जिसमें ज्ञान-भक्तिका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ अभिव्यक्त हुआ है, उस श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें क्या कहा जाय? इसके प्रत्येक अंगसे भगवद्भावपूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधासरिताकी बाढ़ आ रही है—**'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।'** भगवान्के मधुर प्रेमका छलकता हुआ सागर है श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक भक्तगण इसमें सदा अवगाहन करते रहते हैं। परम मधुर भगवद्-रससे भरा हुआ—**'स्वादु स्वादु पदे पदे'**—ऐसा ग्रन्थ बस यही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है।

चतुःश्लोकी भागवत

श्रीब्रह्माजीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें अपना दर्शन दिया, अपने निर्गुण-सगुण स्वरूपोंका ज्ञान दिया, सृष्टि रचनेकी सामर्थ्य दी और सृष्टि करते हुए भी संसारमें लिप्त न हों, इसके लिये चतुःश्लोकोंका उपदेश दिया। जो इस प्रकार है—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्। सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः। तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥

(श्रीमद्भा० २।९।३०—३५)

[श्रीभगवान्ने कहा—हे ब्रह्माजी!] अनुभव, प्रेमाभक्ति तथा साधनोंसे युक्त अत्यन्त गोपनीय अपने स्वरूपका ज्ञान मैं तुम्हें कहता हूँ, तुम उसे सुनकर ग्रहण करो। जितना मेरा विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव करो। सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं ही मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ। वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी

तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझना चाहिये। जैसे प्राणियोंके पंचभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पंचमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपमें प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ। 'यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं'—इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे और 'यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है'—इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं। वे ही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है।

अठारह स्मृतियाँ और उनके रचयिता आचार्य

मनुस्मृति अत्रै बैष्नवीय हारीतक यामी।
जाग्यबल्क्य अंगिरा सनैश्चर सँवृतक नामी॥
कात्यायनि सांडिल्य गौतमी बसिठी दाषी।
सुरगुरु सातातप पारासर क्रतु मुनि भाषी॥
आसा पास उदार धी परलोक लोक साधन्न सो।
दस आठ सुमृति जिन उच्चरी तिन पद सरसिज भाल मो॥ १८॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, यम, याज्ञवल्क्य, अंगिरा, शनि, संवर्तक, कात्यायन, शाण्डिल्य, गौतम, वसिष्ठ, दक्ष, बृहस्पति, शातातप, पराशर तथा महर्षि क्रतु नामवाले जिन अठारह ऋषियोंने स्मृतियोंकी रचना की, उनके चरण-कमलोंमें मैं अपना मस्तक रखता हूँ। आशा-तृष्णाके बन्धनसे छुड़ानेके लिये उदार बुद्धिवाले ऋषियोंने स्मृतियाँ बनायी हैं। वे इस लोकमें उन्नति तथा परलोकमें कल्याणका साधन हैं॥ १८॥

यहाँ संक्षेपमें इन स्मृतियों तथा स्मृतिकारोंके सन्दर्भमें विवरण प्रस्तुत है—

मनुष्य धर्मका मर्म समझ सके, शुद्ध आचरणका महत्त्व जान सके, पाप-पुण्य, नीति-अनीतिको पहचाननेकी सामर्थ्य प्राप्त कर सके तथा देव, पितृ, अतिथि, गुरु आदिके प्रति अपना कर्तव्य समझे एवं अपने कर्तव्य-पथपर बढ़ता रहे—यही स्मृतिग्रन्थोंका प्रधान उद्देश्य है, स्मृतियाँ हमें अच्छे आचारवान् बननेकी शिक्षा देती हैं, सद्व्यवहार सिखाती हैं, सच्चा मानव बननेकी प्रेरणा देते हुए अपने कर्तव्योंका अवबोध कराती हैं और प्रभुप्राप्तिके मार्गको प्रशस्त करती हैं। इस दृष्टिसे धर्मशास्त्रकारों (स्मृतिकारों)-का जगत्पर महान् उपकार है।

स्मृतियाँ अनेक हैं, किंतु श्रीनाभादासजीने अपने भक्तमालमें जिन अठारह स्मृतियोंके प्रणयनकर्ता आचार्यों तथा उनकी स्मृतियोंका नाम प्रमुखरूपसे दिया है, यहाँ संक्षेपमें उन्हींके विषयमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—

(१) मनुस्मृति—राजर्षि मनु और उनके धर्मशास्त्र मनुस्मृतिका सनातनधर्ममें विशेष स्थान है। धर्मशास्त्रकारोंमें मनुका अत्यन्त गौरव है, सभी स्मृतियोंमें मनुस्मृतिका प्राधान्य है **'प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।'** मनुजीद्वारा निर्दिष्ट मानवधर्मशास्त्र (मनुस्मृति) विश्वके सच्चे संविधानके रूपमें और सभी धर्म-कर्मोंके निर्णयके लिये सर्वोपरि मान्य है। मनुस्मृति बारह अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसके उपदेश तथा इसमें बताये गये विधि-विधान सभीके लिये अत्यन्त कल्याणकारी हैं।

(२) अत्रिस्मृति—अत्रिस्मृति एवं अत्रिसंहिताके प्रणेता महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं तथा सप्तर्षियोंमें परिगणित हैं। ये दिव्य ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न एवं भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। कर्दमप्रजापतिकी पुत्री देवी अनसूया इनकी धर्मपत्नी हैं, जो पतिव्रताओंका आदर्श हैं।

(३) विष्णुस्मृति—भगवान् विष्णुद्वारा धरा (पृथ्वी) देवीको दिया गया कल्याणकारी उपदेश वैष्णवधर्मशास्त्र कहलाता है। यह सूत्रों तथा श्लोकोंके रूपमें उपनिबद्ध है। गीताकी तरह इसे भी भगवद्वाणी कहा गया है। इस स्मृतिमें एक सौ अध्याय हैं।

(४) हारीतस्मृति—परम वैष्णव महर्षि हारीतके नामसे तीन स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं—हारीतस्मृति, लघुहारीतस्मृति तथा वृद्धहारीत। महाभारतमें हारीतजीके नामसे हारीतगीता भी प्राप्त होती है। उसके उपदेश बड़े ही कल्याणकारी हैं। महर्षि हारीत भगवान् विष्णुके अनन्य उपासक थे। अपनी स्मृतियोंमें उन्होंने उनकी उपासनापद्धति तथा मन्त्रोंका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

(५) यमस्मृति—धर्मराज यम भगवान् सूर्य और देवी संज्ञाके पुत्र हैं। ये जीवोंके कर्मोंके साक्षी, उनका नियमन करनेवाले होनेके कारण यम तथा धर्मरूप होनेके कारण धर्म या धर्मराज कहलाते हैं। जीवोंको उनके कर्मानुसार अच्छा-बुरा फल प्रदानकर उन्हें शुद्ध एवं पवित्र बनाना तथा भगवान्‌के मार्गमें प्रवृत्त कराना धर्मराज यमका मुख्य कार्य है। इन्होंने भगवन्नाम-महिमाको कल्याणका अत्यन्त सुगम उपाय बताया है। इनकी तीन स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं—यमस्मृति, लघुयमस्मृति और बृहद्यमस्मृति। प्रधानरूपसे तीनों स्मृतियोंमें प्रायश्चित्त-सम्बन्धी विधान निरूपित हैं।

(६) याज्ञवल्क्यस्मृति—रामकथाके प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्यजी महान् योगी, अध्यात्मवेत्ता तथा धर्मके निगूढ़ तत्त्वका ज्ञान रखनेवाले आचार्य हैं। ये उच्चकोटिके भगवद्भक्त हैं। स्मृतिकारोंमें याज्ञवल्क्यजीका स्थान बहुत ही विशिष्ट है। याज्ञवल्क्यस्मृति, योगियाज्ञवल्क्यस्मृति, बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति आदि स्मृतियाँ उनके नामसे विख्यात हैं। याज्ञवल्क्यस्मृतिमें आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित्त नामक तीन अध्याय हैं और अध्यायोंके अन्तर्गत अनेक प्रकरण हैं।

(७) अंगिरास्मृति—महर्षि अंगिरा ब्रह्माजीके पुत्र हैं। कर्दमऋषिकी पुत्री श्रद्धा इनकी धर्मपत्नी हैं। देवगुरु बृहस्पति, उतथ्य तथा संवर्त इनके पुत्र हैं और सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति—इनकी चार दिव्य कन्याएँ हैं। महर्षि अंगिरा अथर्ववेदके प्रवर्तक हैं। इसलिये ये अथर्वा भी कहलाते हैं। इनकी गणना सप्तर्षियोंमें भी है। इनके जीवन-दर्शनका सार यही है कि परात्पर पुरुषोत्तमको तत्त्वतः जान लेनेपर इस जीवात्माके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, इसी बातको उन्होंने मुण्डकोपनिषद् (२। २। ८)-में महाशाल शौनकजीको बताया है—'**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥**' इनके नामसे दो स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें मुख्यरूपसे गृहस्थाश्रमके सदाचार, गोसेवा, पंचमहायज्ञ तथा प्रायश्चित्तविधानका वर्णन है।

(८) शनैश्चरस्मृति—शनि या शनैश्चर भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। श्रीनाभादासजीने इनका धर्मशास्त्रकारोंमें परिगणन किया है।

(९) संवर्तस्मृति—आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न तथा अध्यात्मवेत्ताओं और धर्माचरणके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवालोंमें महात्मा संवर्त विशेष रूपसे परिगणनीय हैं। ये महर्षि अंगिराके पुत्र और देवगुरु बृहस्पतिके छोटे भाई हैं। इनका उदात्त चरित वेद, इतिहास, पुराण तथा महाभारतमें विस्तारसे आया है।

भगवान्‌के भक्तों तथा भक्तिके आचार्योंमें इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। ये परम शिवभक्त, गायत्रीके महान् उपासक, भक्तोंके परम उपास्य तथा मन्त्रद्रष्टा वामदेव, मार्कण्डेय आदि ऋषियोंके परम गुरु हैं। पुराणेतिहास ग्रन्थोंमें वर्णित है कि ये अवधूत-वेषमें गुप्तरीतिसे भगवत्-ध्यानमें निमग्न हो सर्वत्र विचरण किया करते हैं और भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरी इन्हें अत्यन्त प्रिय है। इनकी बनायी हुई संवर्तस्मृति यद्यपि संक्षिप्त है, किंतु इसके उपदेश बड़े ही उपादेय तथा कल्याणकारक हैं। इस स्मृतिमें वर्णाश्रमधर्म, प्रायश्चित्त, गायत्रीजप तथा दानकी महिमा विशेषरूपसे आयी है।

(१०) कात्यायनस्मृति—महर्षि कात्यायनका अत्यन्त प्राचीन धर्मशास्त्रकारोंमें परिगणन है। प्राचीन भारतीय व्यवहार एवं व्यवहार-विधिके नियमोंमें तथा स्त्रीधनकी मीमांसामें महर्षि कात्यायनके वचन अत्यन्त प्रामाणिक माने गये हैं। परवर्ती सभी निबन्धकारोंने इनके वचनोंको उद्‌धृत किया है।

(११) शाण्डिल्यस्मृति—परम भागवत ऋषि शाण्डिल्यजी भक्तिके आचार्य हैं। इनका भक्तिसूत्र अति प्रसिद्ध है। इनके अनुसार भगवान्‌में परम अनुराग ही भक्ति है—'**सा परानुरक्तिरीश्वरे।**' इन्होंने भगवद्भजनको ही सबसे बड़ा कल्याणकारक बताया है—'**क्षेममात्यन्तिकं विप्रा हरेर्भजनमेव हि।**' (शाण्डिल्यसंहिता १।९) आचार्यजी भगवान्‌का सर्वोपरि गुण बताते हुए कहते हैं कि '**मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।**' (शाण्डिल्यसूत्र ४९) अर्थात् भगवान्‌का मुख्य गुण है कारुण्य या दयालुता। इनका धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ शाण्डिल्यस्मृति वैष्णवोंकी परम आचारसंहिता है।

(१२) गौतमस्मृति—महर्षि गौतम वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमें एक ऋषि हैं। ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। देवी अहल्या इनकी पत्नी हैं। महर्षि गौतमके नामसे एक धर्मसूत्र तथा एक स्मृति प्राप्त होती है। गौतमस्मृतिमें मुख्यरूपसे धर्माचरणकी महिमा, पंचयज्ञ, गोमहिमा, आपद्धर्म, भोजनविधि, तीर्थमहिमा तथा भगवद्भक्तिकी महिमा वर्णित है।

(१३) वसिष्ठस्मृति—क्षमाधर्म तथा आचार-निष्ठाके परमादर्श महर्षि वसिष्ठ वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। आप ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। आपकी पत्नी देवी अरुन्धती पतिव्रताओंकी आदर्श हैं। ये भगवान् श्रीरामके गुरु रहे हैं तथा उनके परम भक्त भी हैं। भगवद्भक्तोंमें आपकी प्रथम गणना होती है। आपकी गोसेवा और गोभक्ति प्रसिद्ध ही है। आपकी धर्मशास्त्रीय तथा आचारसम्बन्धी मर्यादाएँ वसिष्ठधर्मसूत्र तथा वसिष्ठस्मृतिमें उपनिबद्ध हैं। धर्माधर्म तथा कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें वसिष्ठजीके वचनोंका विशेष गौरव है।

(१४) दक्षस्मृति—दक्षस्मृतिके निर्माता प्रजापति दक्ष ब्रह्माजीके पुत्र हैं। मनुपुत्री प्रसूति इनकी धर्मभार्या थीं। शंकरपत्नी भगवती सती इन्हीं दक्षकी पुत्री हैं। इसीलिये ये दाक्षायणी भी कहलाती हैं। प्रजापति दक्ष भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त और उनके कृपापात्र हैं। सात अध्यायोंमें उपनिबद्ध दक्षस्मृतिमें मुख्य रूपसे गृहस्थधर्म, सदाचार एवं अध्यात्मयोगज्ञान निरूपित है।

(१५) बृहस्पतिस्मृति—आचार्य बृहस्पति देवोंके भी गुरु हैं। ये वाणी-बुद्धि एवं ज्ञानके अधिष्ठाता तथा महान् परोपकारी हैं। ये महर्षि अंगिराके पुत्र हैं। इनकी बनायी स्मृति संक्षिप्त होनेपर भी बड़ी ही उपयोगी है। इसमें मुख्यरूपसे भूमिदान एवं गोदानकी और भगवद्भक्तिकी महिमा आयी है।

(१६) शातातपस्मृति—महर्षि याज्ञवल्क्यजीने विशिष्ट धर्मशास्त्रकारोंमें महर्षि शातातपजीका उल्लेख किया है। ये महर्षि शरभंगके गुरु हैं। इन्होंने अनेक प्रकारके तपोंका अनुष्ठान किया और तप करते-करते ये अत्यन्त क्षीणकाय हो गये थे। इसीलिये ये शातातप कहलाते हैं। कर्मविपाक (अच्छे-बुरे कर्मोंका फल)-मीमांसाके लिये ये ही सर्वाधिक प्रमाण माने गये हैं। इनके नामसे तीन स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं—

लघुशातातप, वृद्धशातातप तथा शातातपीय कर्मविपाकसंहिता। मुख्य रूपसे इनमें पातक-उपपातक-महापातकोंका निरूपण तथा उनका प्रायश्चित्त वर्णित है।

(१७) पराशरस्मृति—'कलौ पाराशरः स्मृतः' इस वचनके अनुसार कलियुगमें महात्मा पराशरजीका कहा हुआ धर्म विशेष मान्यताप्राप्त है। पराशरजी कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजीके पिता हैं। विष्णुपुराण इन्हींकी रचना है। पराशरस्मृतिमें बारह अध्याय हैं। इन्हींके नामसे एक बृहद्-पाराशरस्मृति भी प्राप्त होती है।

(१८) क्रतुस्मृति—महर्षि क्रतु ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। ये धर्मज्ञ, सत्यवादी और व्रतपरायण महात्मा हैं। बालखिल्य ऋषिगण इन्हीं महर्षिके पुत्र हैं। इन महात्माने धर्मकी व्यवस्थाके लिये जो शास्त्र बनाया, वह क्रतुस्मृतिके नामसे कहा जाता है। श्रीनाभादासजीने इनका स्मृतिकारोंमें परिगणन किया है।

श्रीरामसचिव (श्रीरामके मन्त्रिगण)

धृष्टी बिजय जयंत नीतिपर सुचिर बिनीता।
राष्टरबर्धन निपुन सुराष्टर परम पुनीता॥
असोक सदा आनंद धर्मपालक तत्ववेता।
मन्त्रीबर्य सुमंत्र चतुर्भुज मंत्री जेता॥
अनायास रघुपति प्रसन भवसागर दुस्तर तरैं।
पावैं भक्ति अनपाइनी (जे) राम सचिव सुमिरन करैं॥ १९॥

धृष्टिजी, विजयजी, जयन्तजी, राष्ट्रवर्धन, सुराष्ट्र, अशोक, धर्मपालक और सुमन्त्रजी—ये नीतिपरायण, पवित्र, सुशील, परम चतुर, आनन्दमय और रहस्यके ज्ञाता हैं। सुमन्त्रजी चारों युगोंके मन्त्रियोंमें विजयी और श्रेष्ठ हैं। जो लोग भगवान् श्रीरामके इन आठ मन्त्रियोंका स्मरण करते हैं, वे श्रीरामजीकी अचला भक्ति पाते हैं, उनपर प्रभु अपने-आप ही प्रसन्न हो जाते हैं और वे जन्म-मृत्युके कठिन चक्रसे छूट जाते हैं, संसार-सागरसे पार हो जाते हैं॥ १९॥

यहाँ भगवान् श्रीरामकी सभाके मन्त्रिगणोंके सम्बन्धमें कुछ बातें निरूपित हैं—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें महाराज दशरथके मन्त्रिजनोचित गुणोंसे सम्पन्न आठ मन्त्रियोंका वर्णन मिलता है। ये सदा ही राजाके प्रिय एवं हितमें लगे रहते थे। ये सभी शुद्ध आचार-विचारसे युक्त थे और राजकीय कार्योंमें निरन्तर संलग्न रहते थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्॥

(वा०रा० बाल० ७। ३)

अर्थात् धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप (अशोक), धर्मपाल और आठवें सुमन्त्र, जो अर्थशास्त्रके विशेषज्ञ थे।

कालान्तरमें महाराज दशरथके दिवंगत हो जानेके बाद, जबकि श्रीरामचन्द्रजी वनवासमें थे और भरतजी नन्दिग्राममें निवास कर रहे थे, इन मन्त्रियोंने ही अयोध्याकी सम्पूर्ण व्यवस्थाको सुचारुरूपसे सँभाले रखा और भगवान् श्रीरामके आनेपर पुनः अपने-अपने पदोंपर नियुक्त हो गये। ये सभी उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा राजाके हितैषी थे। नीतिरूपी नेत्रोंसे देखते हुए ये सदा सजग रहते थे। अपने गुणोंके कारण

ये सभी मन्त्री गुरुतुल्य समादरणीय थे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि इनमें भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य प्रेम था। इनमें भी सुमन्त्रजीका तो पिताके बालसखा होनेके कारण श्रीरामजी विशेषरूपसे पिताकी ही भाँति आदर करते थे। यहाँ संक्षेपमें श्रीसुमन्त्रजीका चरित्र दिया जा रहा है—

श्रीसुमन्त्रजी

सोइ जीवन सोई जनम, सोइ तन सफल सनाथ।
अपनो कहि जानत जिनहिं, सतकारत रघुनाथ॥

सुमन्त्रजीका जन्म सूतकुलमें हुआ था, परंतु अपनी योग्यता, कर्तव्यपरायणता और राज्यके प्रति निष्ठासे उन्होंने अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के महामन्त्री होनेका गौरव प्राप्त किया। अयोध्यासम्राट् महाराज दशरथके ये बालमित्र थे, सखा थे और महाराजके निजी सारथि भी थे। इनकी सम्मतिसे ही महाराज राज्यके सब कार्य करते थे और सभी राज्यसेवकोंके ये अध्यक्ष भी थे। यात्रा, विवाह, राज्याभिषेक आदि जितने भी बृहत् कर्म अयोध्यामें होते थे, उनकी पूरी व्यवस्था सुमन्त्रजी ही करते थे। श्रीरामचन्द्रजी पिताके इन सखा एवं मन्त्रीको पिताके समान ही आदर देते थे। महारानियाँ भी सुमन्त्रका सम्मान करती थीं, परंतु इन सबसे बढ़कर उनके चरित्रका जो अत्यन्त उज्ज्वल पक्ष है, वह है उनका श्रीरामप्रेम।

गुरु वसिष्ठजीसे आज्ञा लेकर महाराज दशरथने सुमन्त्रसे सम्मति ली और श्रीरामको दूसरे ही दिन युवराजपद देना निश्चित हो गया। सुमन्त्र उस महोत्सवका प्रबन्ध करनेमें लग गये; किंतु दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज बहुत देरतक राजभवनसे निकले ही नहीं। सुमन्त्र ही अन्तःपुरमें जाकर महाराजको जगा सकते थे। सुमन्त्र भीतर गये। उन्होंने कोपभवनमें भूमिपर मूर्च्छित पड़े हुए महाराजको और पास बैठी रोषकी मूर्ति कैकेयीको देखा। यहींसे उनकी व्यथाके अपार समुद्रका प्रारम्भ हो गया। कैकेयीके कहनेसे वे श्रीरामको वहाँ बुला लाये। कैकेयीके मुखसे उन्होंने श्रीरामको वनवास देनेकी बात सुनी और एक शब्दतक व्यथाके मारे उनके मुखसे नहीं निकल सका।

श्रीराम भाई लक्ष्मण और जानकीजीके साथ वनको चले। महाराजकी आज्ञासे सुमन्त्रने उन्हें रथपर बैठाया। शृंगवेरपुरतक रथ आया। शृंगवेरपुरमें गंगातटपर श्रीरामने अपनी घुँघराली काली अलकोंको वटके दूधसे चिपकाकर जटा बना लिया। सुमन्त्रका हृदय फटा जाता था। उन्होंने महाराज दशरथका सन्देश सुनाकर श्रीरामको लौटनेके लिये कहा; श्रीजनकराजकुमारीको वनके क्लेश बताकर अयोध्या चलनेकी प्रार्थना की; किंतु कोई फल न हुआ। श्रीराम और वैदेही तो सदासे उनको पिताकी भाँति मानते आये हैं। आज भी वही सम्मान, वही आदर, वही संकोचपूर्ण विनय; किंतु कोई भी लौटकर साथ नहीं चलना चाहता। सुमन्त्रने बहुत प्रयत्न किया कि 'उसे ही वनमें साथ चलनेकी अनुमति मिल जाय, पर ऐसा कब सम्भव था। सुमन्त्रकी दशा क्या हो गयी?'

बहुत प्रकार समझा-बुझाकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें लौटाया, पर सुमन्त्र लौट न सके। वे बार-बार लौट आते थे। केवटने नाव चला दी। अयोध्याके जीवन-धन वन चले गये। जब निषादराज कुछ दूर श्रीराघवको पहुँचाकर लौटे, तब उन्होंने जलसे बाहर पड़ी मछलीकी भाँति तड़पते सुमन्त्रको देखा। साथमें चार सेवक देकर किसी प्रकार उन्हें अयोध्या लौटाया। सुमन्त्रकी अन्तर्वेदनाका पार नहीं है। वे क्या मुख लेकर अयोध्या जायँ। पुरवासियोंको, सेवकोंको, महारानी कौसल्याको और महाराजको कौन-सा संवाद सुनायें। किसी प्रकार अन्धकार होनेपर वे नगरमें गये। रथ राजद्वारपर छोड़कर भवनमें प्रवेश किया। उस समय उनकी वाणी विकल हो गयी, कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता, आँखोंसे दिखायी नहीं देता; वे सबसे पूछते हैं—राजा कहाँ हैं?

सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥

वे किसी प्रकार महाराजके पास पहुँचे। रामका सन्देश कहनेका उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, महाराजको धैर्य देनेका प्रयास किया; किंतु उन्हींका हृदय हाहाकार कर रहा था। उन्होंने सन्देशके अन्तमें कहा—

मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥

महाराज दशरथने शरीर त्याग दिया। अयोध्या अनाथ हो गयी। सुमन्त्र धैर्य धारण न करें तो उनके हृदयधन श्रीरामका साम्राज्य व्यवस्थित कैसे रहे? ननिहालसे भरतजी लौटे और पिताकी अन्त्येष्टि करके वे निष्पाप चित्रकूट पहुँचे बड़े भाईको मनाने। वहाँसे वे श्रीरामकी चरणपादुका ले आये। सिंहासनपर वे पादुकाएँ प्रतिष्ठित हुईं। सुमन्त्रने धैर्यपूर्वक व्यवस्था सँभाल ली और वे चौदह वर्ष उसे सँभाले रहे। अन्तमें अयोध्याके स्वामी अयोध्या लौटे। श्रीरामने सुमन्त्रको सदा पिताकी भाँति ही आदर दिया और सुमन्त्र राम-राज्यमें भी उस साम्राज्यके महामन्त्रीपदपर प्रतिष्ठित रहे।

श्रीराम-सहचरवर्ग

दिनकर सुत हरिराज बालिबछ केसरि औरस।
दधिमुख द्विबिद मयंद रिच्छपति सम को पौरस॥
उल्का सुभट सुषेन दरीमुख कुमुद नील नल।
सरभ रु गवै गवाच्छ पनस गँधमादन अतिबल॥
पद्म अठारह जूथपति रामकाज भट भीर के।
सुभ दृष्टि बृष्टि मो पर करौ जे सहचर रघुबीर के॥ २०॥

सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीवजी, बालिपुत्र अंगदजी, केशरीके पुत्र हनुमान्‌जी, दधिमुखजी, द्विविदजी, मयन्दजी, जिनके समान कोई साहसी और बलवान् नहीं है—ऐसे रीछोंके राजा जाम्बवान्‌जी, श्रेष्ठ योद्धा उल्कामुखजी, सुषेणजी, दरीमुख, कुमुद, नील, नल, शरभ, गवय, गवाक्ष, पनस और महाबलवान् गन्धमादन आदि अठारह पद्म जो सेनापति हैं—ये संकटके समय भक्तोंके तथा श्रीरामजीके कार्यको करनेवाले महान् वीर हैं। श्रीरामचन्द्रजीके ये जो सखागण हैं, वे हमारे ऊपर मंगलकारिणी कृपादृष्टिकी वर्षा करें॥ २०॥

यहाँ श्रीरामजीके इन सहचरोंका किंचित् वर्णन प्रस्तुत है—

सूर्यपुत्र सुग्रीव

वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामके सखा और भक्त थे। इनका वर्णन छन्द ९ में आया है।

बालिपुत्र अंगद

वनवासके समय भगवती जानकीका अन्वेषण करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम ऋष्यमूकपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की। सुग्रीवका पक्ष लेकर उन्होंने वानरराज बालिको मारा। मरते समय बालिने अपने पुत्र अंगदको उन सर्वेश्वरके चरणोंमें अर्पित किया। बालिने कहा—

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥

(रा०च०मा० ४। १०। २ छं०)

प्रभुने अंगदको स्वीकार किया। सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य मिला, किंतु युवराजपद बालिकुमार

अंगदजीका ही रहा। अंगदने भगवान्‌की इस कृपाको हृदयसे ग्रहण किया। श्रीसीताजीको ढूँढ़ते हुए जब वानर-वीरोंका दल दक्षिण समुद्रतटपर पहुँचा और गृध्रराज सम्पातिसे यह पता चल गया कि जानकीजी लंकामें हैं, उस समय यह प्रश्न सामने आया कि सौ योजन समुद्र पार करके लंकामें कौन जाय, इसपर युवराज राम-काजके लिये लंका जानेको उद्यत हो गये थे। परंतु जाम्बवन्तजीने उन्हें नहीं जाने दिया। हनुमान्‌जी लंका गये और वहाँके समाचार ले आये। भगवान्‌की कृपासे समुद्रपर सेतु बाँधा गया। असंख्य वानरी सेना लंकाके त्रिकूटपर्वतपर उतर गयी। अब प्रभुने अंगदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा। श्रीरामने अंगदके विषयमें वहाँ कहा है—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥

(रा०च०मा० ६।१७।७)

अंगदजीके इस दौत्यकर्मको ठीक-ठीक समझना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जी रावणसे मिल चुके थे। उसे सामनीतिसे समझानेका जो प्रयत्न उन्होंने किया, वह असफल हो चुका था। उसीको फिर दुहराना बुद्धिमानी नहीं थी। रावण अहंकारी है, वह शिक्षा सुनना ही नहीं चाहता, प्रलोभनका उसपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता—यह पता लग चुका था। अब तो हनुमान्‌जीके कार्यको आगे बढ़ाना था। डाँटकर, भय दिखाकर ही बुद्धिहीन अहंकारी लोगोंको रास्तेपर लाया जा सकता है। यदि रावण न भी माने तो उसके साहसको तोड़ देना, उसके अनुचरोंको भयभीत कर देना आनेवाले युद्धकी दृष्टिसे आवश्यक था। अंगदजीने यही किया। रावणकी राजसभामें उनकी तेजस्विता, उनका शौर्य अद्वितीय रहा। श्रीराम सर्वेश्वर हैं। उनके सेवककी प्रतिज्ञा त्रिलोकीमें कोई भंग नहीं कर सकता—यह अविचल विश्वास अंगदमें था; इसीसे उन्होंने रावणकी सभामें प्रतिज्ञा की—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥

(रा०च०मा० ६।३४।९)

इस प्रतिज्ञाका दूसरा कोई अर्थ करना अंगदके दृढ़ विश्वासको न समझना है। रावण नीतिज्ञ था। उसने अनेक प्रकारकी भेदनीतिसे काम लिया। उसने सुझाया—'बालि मेरा मित्र था। वे राम-लक्ष्मण तो बालिको—तुम्हारे पिताको मारनेवाले हैं। यह तो बड़ी लज्जाकी बात है कि तुम अपने पितृघातीका पक्ष ले रहे हो।' अंगदने रावणको स्पष्ट फटकार दिया—

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

(रा०च०मा० ६।२१।१०)

जब रावण भगवान्‌की निन्दा करने लगा, तब युवराज उसे सह नहीं सके। क्रोध करके उन्होंने मुट्ठी बाँधकर दोनों भुजाएँ भूमिपर बड़े जोरसे दे मारीं। भूमि हिल गयी। रावण गिरते-गिरते बचा। उसके मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े। उनमेंसे चार मुकुट अंगदने उठाकर भगवान्‌के पास उछाल दिये। इतना शौर्य दिखाकर, इतना पराक्रम प्रकट करके जब वे प्रभुके पास आये और जब उन दयामयने पूछा—

रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥

(रा०च०मा० ६।३८।६-७)

परंतु जिनपर प्रभुकी कृपा है, जो भगवान्‌के चरणोंके अनन्य भक्त हैं, उनमें कभी किसी प्रकार भी अहंकार नहीं आता। उस समय अंगदजीने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया—

सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥
साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए॥

(रा०च०मा० ६। ३८। ८—१०)

—जैसे अंगदने कुछ किया हो, इसका उन्हें बोधतक नहीं। वे सर्वथा निरभिमान हैं। इसके पश्चात् युद्ध हुआ। रावण मारा गया। उस युद्धमें युवराज अंगदका पराक्रम वर्णनातीत है। लंका-विजय करके श्रीराम अयोध्या पधारे। राज्याभिषेक हुआ। अन्तमें कपिनायकोंको विदा करनेका अवसर आया। भगवान् एक-एकको वस्त्राभरण देकर विदा करने लगे। अंगदका हृदय धक्-धक् करने लगा। वे एक कोनेमें सबसे पीछे दुबककर बैठ गये। 'कहीं प्रभु मुझे भी जानेको न कह दें'—इस आशंकासे। श्रीरामके चरणोंसे पृथक् होना होगा, इस कल्पनासे ही वे व्याकुल हो गये। जब सभी वानर-यूथपतियों एवं रीछ-नायकोंको भगवान् अपने उपहार दे चुके, जब सब आज्ञा पाकर उठ खड़े हुए, तब अन्तमें प्रभुने अंगदजीकी ओर देखा। अंगदका शरीर काँपने लगा। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहने लगे—

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥
असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥

(रा०च०मा० ७। १८। १—७)

'नाथ! मेरे पिताने मरते समय मुझे आपके चरणोंमें डाला है, अब आप मेरा त्याग न करें। मुझे जिस किसी भी प्रकार अपने चरणोंमें ही पड़ा रहने दें!' यह कहकर अंगद श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर गिर पड़े। करुणासागर प्रभुने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। अपने निजी वस्त्र, अपने आभरण और अपने कण्ठकी माला श्रीराघवने अंगदको पहनायी और स्वयं अंगदको पहुँचाने चले। अंगद बार-बार प्रभुको दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। बार-बार उस कमलमुखकी ओर देखते हैं। बार-बार सोचते हैं—'अब तो मुझे प्रभु कह दें कि 'अच्छा, तुम यहीं रहो।''

दूरतक दयाधामने अंगदको पहुँचाया। जब हनुमान्जी सुग्रीवसे अनुमति लेकर श्रीरामके पास लौटने लगे, तब अंगदजीने उनसे कहा—

कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥

(रा०च०मा० ७। १९ क)

महाभाग! मैं आपसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु से मेरी दण्डवत् कहना और श्रीरघुनाथजीको बार-बार मेरी याद कराते रहना।

केशरीपुत्र हनुमान्जी

श्रीहनुमान्जीसे सम्बन्धित वर्णन छन्द ९ में आया है।

श्रीजाम्बवान्‌जी

श्रीजाम्बवान्‌जीका विवरण छन्द ९ में आया है।

अन्य सहचर

इनके अतिरिक्त दधिमुख, द्विविद, मयन्द, सुषेण, नील, नल, शरभ, गवय और गन्धमादन—ये भी भगवान् श्रीरामके सहचर थे। ये सभी देवांशसे उत्पन्न थे। ब्रह्माजीके आदेशसे इन लोगोंने वानरका शरीर धारण किया था। इनमें अथाह बल था। श्रीदधिमुखजी चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए थे और ये सुग्रीवके मामा थे। ये बड़े ही सौम्य, भगवद्भक्त और मधुरभाषी थे। सुग्रीवके मधुवन नामक मनोरम महावनके ये प्रधान रक्षक थे। राम-रावण-युद्धके समय इन्होंने अपने वानर-सैनिकोंके साथ श्रीरामका साथ दिया था। द्विविद और मयन्द अश्विनीकुमारोंके पुत्र थे। श्रीसुषेणजी धर्मके अंशसे अवतीर्ण हुए थे। नील अग्निके और नल विश्वकर्माके पुत्र थे। ये दोनों लोग एक ही मातासे उत्पन्न थे, अतः भाई-भाई थे। समुद्रपर सेतु बाँधनेमें इन दोनोंका विशेष योगदान था। ये दोनों दस-दस करोड़ वानरोंके यूथपति थे। श्रीशरभजी पर्जन्य देवताके पुत्र थे। श्रीगवयजी यमराजके अंशसे अवतीर्ण हुए थे और उन्हींके समान पराक्रमी थे। श्रीगन्धमादनजी कुबेरके पुत्र थे। भगवान्‌ने इन सबको अपना सखा माना है। इनकी प्रशंसा करते हुए प्रभु श्रीराम गुरुदेव वसिष्ठजीसे कहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

इन सहचरोंका भी प्रभुपर इतना प्रेम था कि वे लोग जी-जानसे युद्ध करनेपर भी इसे प्रभुकी सेवामें तुच्छ कार्य भी नहीं गिनते। भगवान्‌द्वारा प्रशंसा किये जानेपर वे कहते हैं—

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥

युद्धकी समाप्तिपर इन सहचरों और इनकी सेनाका आभार मानते हुए प्रभुने इन्हें घर जानेके लिये विदा किया, परंतु प्रेमवश इनमेंसे कोई घर जानेको तैयार नहीं हुआ, अतः प्रभु सबको साथ लेकर अयोध्या आये और वहाँ छः महीनेतक सबका अतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् प्रभुने सबको वस्त्र-आभूषणसे सम्मानित करके विदा किया। अन्य लोग तो प्रभु श्रीरामजीकी साँवली मूर्ति अपने हृदयमें बसाकर चले गये, परंतु अंगद और श्रीहनुमान्‌जी तब भी नहीं गये। अंगदके विशेष प्रेमको देखकर भगवान् श्रीरामने उन्हें अपने हृदयकी माला, वस्त्र और मणि पहनाकर और बहुत प्रकारसे समझा-बुझाकर विदा किया और इतना ही नहीं भाइयोंसहित उन्हें बहुत दूरतक पहुँचाने भी गये। श्रीहनुमान्‌जी तो भगवान्‌के नित्य परिकर ही हैं, वे सुग्रीवजीसे अनुमति लेकर भगवान्‌की चरणसेवामें ही रह गये।

नौ नन्दजी

धरानंद ध्रुवनंद तृतिय उपनंद सु नागर।
चतुर्थ तहाँ अभिनंद नंद सुखसिंधु उजागर॥
सुठि सुनंद पसुपाल निर्मल निस्चै अभिनंदन।
कर्मा धर्मानंद अनुज बल्लभ जग बंदन॥
आस पास वा बगर के (जहँ) बिहरत पसुप सुछंद।
ब्रज बड़े गोप पर्जन्य के सुत नीके नव नंद॥ २१॥

व्रजमण्डलके सबसे बड़े माननीय गोप पर्जन्यजीके अति सुन्दर एवं सुशील नौ पुत्र थे, वे ही नौ नन्द हैं। धरानन्दजी, ध्रुवनन्दजी, तीसरे परम चतुर उपनन्दजी और चौथे अभिनन्दजी थे। प्रसिद्ध यशस्वी तथा सुखके सागर नन्दजी थे। पशुओंके पालक आनन्दप्रद निर्मल और निश्चल बुद्धिवाले सुनन्दजी थे। विश्ववन्दनीय कर्मानन्दजी और धर्मानन्दजी तथा उनके छोटे भाई बल्लभजी थे। जहाँ गायोंके चरनेका स्थान है, वहाँ उसीके आस-पास स्वच्छन्दतासे ये गोप विचरते रहते थे॥ २१॥

यहाँ श्रीपर्जन्यजी तथा उनके नन्द आदि नौ पुत्रोंके विषयमें संक्षेपमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—

श्रीपर्जन्यजी

यदुवंशमें सर्वगुणसम्पन्न एक देवमीढ़ नामके राजा हुए। वे श्रीमथुराजीमें निवास करते थे। उनके दो पत्नियाँ थीं, पहली क्षत्रियवर्णकी, दूसरी वैश्यवर्णकी। उन दोनों रानियोंके क्रमसे यथायोग्य दो पुत्र हुए। एकका नाम था शूरसेन, दूसरेका नाम था पर्जन्य। माता-पिता दोनों क्षत्रियवर्ण होनेसे श्रीशूरसेनजी क्षत्रिय रहे, परंतु पर्जन्यजीका जन्म वैश्यवर्णकी मातासे हुआ था। अतः **'मातृवद् वर्णसङ्करः'** इस न्यायसे वैश्य जातिको प्राप्त होकर इन्होंने गोपालन वृत्तिविशेषको अपनाया। ये बड़े ही भगवत्-भागवतसेवी थे। साधु ब्राह्मणोंमें इनकी अपार श्रद्धा थी। ये अपने औदार्य गुणसे परम प्रशंसनीय थे। ये यशमें प्रह्लाद, प्रतिज्ञामें ध्रुव, महिमामें पृथु, शत्रुओंके प्रति भीष्म, मित्रोंके प्रति शंकर, गौरवमें ब्रह्मा तथा तेजमें श्रीहरिके तुल्य थे। पर्जन्य (मेघ)-की तरह प्राणिमात्रके लिये मंगलकारी होकर इन्होंने अपने पर्जन्य नामको चरितार्थ कर दिया था। इनके समान ही इनकी परम भागवती पत्नीने भी सर्व शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न होकर अपने 'वरीयसी' इस नामको सार्थक किया था। ये समस्त गोपोंके राजा थे। इनके परम भाग्यशाली उपनन्दादि नव पुत्र थे।

गर्गसंहितामें वर्णन आता है कि गोलोकधाममें भगवान् श्रीकृष्णके निकुंजद्वारपर जो नौ गोप हाथमें बेंत लिये पहरा देते थे, वे ही श्याम अंगवाले नौ गोप भगवल्लीलामें सहयोग देनेके लिये व्रजमें 'नौ नन्द' के रूपमें अवतरित हुए थे। ये लोग बालकृष्णको अपने घर ले जाते और वहाँ बिठाकर उनकी रूप-माधुरीका आस्वादन करते। वे उन्हें खेलनेके लिये गेंद देते, उनका लालन-पालन करते और उनकी लीलाओंका गान करते थे। इसी प्रकार गोलोकधाम-निकुंजमें जो करोड़ों गौएँ हैं, उनके पालनमें रत रहनेवाले गोप उपनन्द कहलाते हैं। भगवान्‌की लीलामें सहयोग देनेके लिये वे भी यहाँ अवतरित हुए। नौ नन्दोंमें भी श्रीनन्दरायजीकी विशेष महिमा है।

श्रीनन्दजी

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः। अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

वैसे तो नन्दबाबा नित्य-गोलोकधाममें सदा ही विराजमान रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके नित्य सिद्ध पिता हैं। जब श्यामसुन्दरको पृथ्वीपर आना होता है, तब गोप, गोपियाँ, गायें और पूरा व्रजमण्डल नन्दबाबाके साथ पहले ही पृथ्वीपर प्रकट हो जाता है। किंतु जब भी इस प्रकारके भगवान्‌के नित्यजन पृथ्वीपर पधारते हैं, कोई-न-कोई जीव जो सृष्टिमें उनका अंशरूप होता है, उनसे एक हो जाता है। इसलिये ऐसा भी वर्णन आता है कि पूर्वकल्पमें वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी धरादेवीने भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये बहुत कठिन तपस्या की। जब ब्रह्माजी उन्हें वरदान देकर तपस्यासे निवृत्त करनेके लिये उनके समीप आये, तब उन्होंने सृष्टिकर्तासे वरदान माँगा—'जब विश्वेश्वर श्रीहरि धरापर प्रकट हों, तब हमारा उनमें पुत्रभाव हो।' ब्रह्माजीके उसी वरदानके प्रभावसे द्रोण व्रजमें नन्द हुए और धरादेवी यशोदा हुईं।

मथुरामें वृष्णिवंशमें सर्वगुणालंकृत राजा देवमीढ़जी हुए। इनके दो पत्नियाँ थीं—एक क्षत्रियकन्या और

दूसरी वैश्यपुत्री। क्षत्रियकन्यासे इनके पुत्र हुए—शूरसेनजी। इन्हीं शूरसेनजीके पुत्र वसुदेवजी हुए। वैश्यकन्यासे हुए—पर्जन्यजी। ये अपनी माताके कारण गोप-जातिके माने गये और मथुराके अन्तर्गत बृहद्वनमें—यमुनाजीके उस पार महावनमें इन्होंने अपना निवास बनाया। मथुरामण्डलकी गो-सम्पत्तिके ये प्रमुख अधिकारी हुए। इनके पुत्र हुए—उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सन्नन्द और नन्दन। पिताके पश्चात् व्रजमण्डलके गोष्ठनायकों तथा भाइयोंकी सम्मतिसे योग्य होनेके कारण मझले भाई होनेपर भी नन्दजी व्रजेश्वर हुए। वसुदेवजी इनके भाई ही लगते थे ओर उनसे नन्दबाबाकी घनिष्ठ मित्रता थी। जब मथुरामें कंसका अत्याचार बढ़ने लगा, तब वसुदेवजीने अपनी पत्नी रोहिणीको नन्दजीके यहाँ भेज दिया। गोकुलमें ही रोहिणीजीकी गोदमें बलरामजी पधारे। श्रीकृष्णचन्द्रको भी वसुदेवजी चुपचाप नन्दगृहमें रख आये। राम-श्याम नन्दगृहमें लालित-पालित हुए। नन्दबाबा वात्सल्य-रसके अधिदेवता हैं। उनके प्राण श्रीकृष्णमें ही बसते हैं। अपने श्यामके लिये ही वे उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, प्राण धारण करते तथा दान-धर्म, पूजा-पाठ आदि करते थे। कन्हैया प्रसन्न रहे, सकुशल रहे—बस, एकमात्र यही चिन्ता और यही इच्छा उनमें थी।

जब गोकुलमें नाना प्रकारके उत्पात होने लगे, शकटका गिरना, यमलार्जुनका टूटना आदि घटनाएँ हुईं, तब नन्दबाबा अपने पूरे समुदायके साथ वहाँसे बरसानेके पास नन्दगाँव चले गये। एक बार बाबाने एकादशीका व्रत किया था। रात्रि-जागरण करके वे गोपोंके साथ हरि-कीर्तनमें लगे थे। कुछ अधिक रात्रि शेष थी, तभी प्रातःकाल समझकर वे स्नान करने यमुनाजीमें उतर गये। वरुणका एक दूत उन्हें पकड़कर वरुणजीके पास ले गया। व्रजवासी नन्दबाबाको न देखकर विलाप करने लगे। उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र यमुनामें कूदकर वरुणलोक पहुँचे। जलके अधिदेवता वरुणने भगवान्‌का बड़ा आदर किया, ससम्मान पूजा की। बाबाको वहाँसे लेकर श्यामसुन्दर लौट आये। इसी प्रकार शिवरात्रिको अम्बिका-वनकी यात्रामें रातको सोते समय जब बाबाको अजगरने आकर पकड़ लिया और गोपोंद्वारा जलती लकड़ियोंसे मारे जानेपर भी वह टस-से-मस नहीं हुआ, तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चरणोंसे छूकर उसे सद्गति दी और बाबाको छुड़ाया।

अक्रूरजी व्रजमें आये। नन्दबाबा गोपोंके साथ राम-श्यामको लेकर मथुरा चले गये। मथुरामें श्रीकृष्णचन्द्रने कंसको मारकर अपने नाना उग्रसेनको राजा बनाया। वसुदेव-देवकीको कारागारसे छुड़ाया। यह सब तो हुआ, किंतु राम-श्याम व्रज नहीं लौटे। वे मथुरा ही रह गये। नन्दबाबाको लौट आना पड़ा व्रज। जब उद्धवजी श्यामका सन्देश लेकर व्रज आये, तब बाबाने उनसे व्याकुल होकर पूछा—'उद्धवजी! क्या कभी श्यामसुन्दर हम सबको देखने यहाँ आयेंगे? क्या हम उनके हँसते हुए कमल-मुखको एक बार देख सकेंगे? हमारे लिये उन्होंने दावाग्निपान किया, कालियदमन किया, इन्द्रकी वर्षासे हमें बचाया, अजगरसे मेरी रक्षा की। अनेक संकटोंसे व्रजका परित्राण किया उन्होंने। उनका पराक्रम, उनकी हँसी, उनका बोलना, उनका चलना, उनकी क्रीड़ा आदिका जब हम स्मरण करते हैं और जब हम उनके चरण-कमलोंसे अंकित पर्वत, पृथ्वी, वन एवं यमुना-पुलिनको देखते हैं, तब अपने-आपको भूल जाते हैं। हमारी सब क्रियाएँ शिथिल पड़ जाती हैं।'

श्रीबलरामजी द्वारकासे एक बार व्रज आये और दो महीने वहाँ रहे। फिर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें पूरा व्रजमण्डल और द्वारकाका समाज एकत्र हुआ। यहीं बाबाने अपने श्यामको फिर देखा। कुरुक्षेत्रसे लौटनेपर तो व्रजमण्डल, उसके सभी दिव्य तरु, लता, पादपतक अन्तर्हित हो गये। जैसे नन्दबाबा गोप, गोपी, गौएँ तथा व्रजमण्डलके साथ नित्यलोकसे पृथ्वीपर प्रकट हुए थे, वैसे ही नित्यलोकको चले गये सबको साथ लेकर।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके सहचर—व्रजवासीगण

नंद गोप उपनंद ध्रुव धरानंद (महरि) जसोदा।
कीरतिदा बृषभानु कुँअरि सहचरि (बिहरति) मन मोदा॥
(मधु) मंगल सुबल सुबाहु भोज अर्जुन श्रीदामा।
मंडल ग्वाल अनेक स्याम संगी बहु नामा॥
घोष निवासिन की कृपा सुर नर बांछत आदि अज।
बाल बृद्ध नर नारि गोप हौं अर्थी उन पाद रज॥ २२॥

ब्रह्मा आदि सभी देव तथा ऋषि-मुनि जिन व्रजमण्डलके निवासियोंकी कृपाको चाहते हैं, उन बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी गोपी-ग्वालोंकी चरणरजको मैं अपने सिरपर चढ़ाना चाहता हूँ। नन्दगोप, उपनन्द, ध्रुवनन्द, धरानन्द, नन्दजीकी पत्नी यशोदाजी, कीर्ति देनेवाली वृषभानुकी पत्नी कीर्तिजी, बरसानेके राजा वृषभानुजी, वृषभानुकुमारी श्रीराधिका, प्रसन्नचित्ता सखियाँ, मधुमंगल, सुबल, सुबाहु, भोज, अर्जुन, श्रीदामा और सम्पूर्ण ग्वाल-मण्डली जिनके अनेक नाम हैं, जो श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके साथी हैं, मैं इन सबके पदकी धूरिका चाहनेवाला हूँ॥ २२॥

उपर्युक्त छप्पयमें वर्णित श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके लीलासहचर व्रजवासीजनोंमेंसे कुछका वर्णन यहाँ संक्षेपमें प्रस्तुत है—

नन्दपत्नी माता यशोदा

(१)

वसुश्रेष्ठ द्रोणने पद्मयोनि ब्रह्मासे यह प्रार्थना की—'देव! जब मैं पृथ्वीपर जन्म धारण करूँ तो विश्वेश्वर स्वयं भगवान् श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी परमा भक्ति हो।' इस प्रार्थनाके समय द्रोणपत्नी धरा भी वहीं खड़ी थीं। धराने मुखसे कुछ नहीं कहा; पर उनके अणु-अणुमें भी यही अभिलाषा थी, मन-ही-मन धरा भी पद्मयोनिसे यही माँग रही थीं। पद्मयोनिने कहा—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' इसी वरके प्रतापसे धराने व्रजमण्डलके एक सुमुख नामक गोप* एवं उनकी पत्नी पाटलाकी कन्याके रूपमें भारतवर्षमें जन्म धारण किया—उस समय जबकि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अवतरणका समय हो चला था, श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरका अन्त हो रहा था। पाटलाने अपनी कन्याका नाम यशोदा रखा। यशोदाका विवाह व्रजराज नन्दसे हुआ। ये नन्द पूर्वजन्ममें वही द्रोण नामक वसु थे, जिन्हें ब्रह्माने वर दिया था।

भगवान्‌की नित्य लीलामें भी एक यशोदा हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्य माता हैं। वात्सल्यरसकी घनीभूत मूर्ति ये यशोदारानी सदा भगवान्‌को वात्सल्यरसका आस्वादन कराया करती हैं। जब भगवान्‌के अवतरणका समय हुआ तो इन चिदानन्दमयी, वात्सल्यरसमयी यशोदाका भी इन यशोदा (पूर्वजन्मकी धरा)-में ही आवेश हो गया। पाटलापुत्री यशोदा नित्ययशोदासे मिलकर एकमेक हो गयीं तथा इन्हीं यशोदाके पुत्रके रूपमें आनन्दकन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए।

जब भगवान् अवतीर्ण हुए थे, उस समय यशोदाकी आयु ढल चुकी थी। अतः जब पुत्र हुआ तो फिर आनन्दका कहना ही क्या है—

* सुमुखका एक नाम महोत्साह भी था।

'सूखत धानन कौं ज्यौं पान्यो, यों पायौ या पनमें।'

—यशोदाको पुत्र हुआ है, इस आनन्दमें सारा व्रजपुर निमग्न हो गया।

(२)

छठे दिन यशोदाने अपने पुत्रकी छठी पूजी। इसके दूसरे दिनसे ही मानो यशोदा-वात्सल्य-सिन्धुका मन्थन आरम्भ हो गया, मानो स्वयं जगदीश्वर अपनी जननीका हृदय मथते हुए राशि-राशि भावरत्न निकाल-निकालकर बिखेरने लगे, बतलाने लगे, घोषणा करने लगे—'जगत्‌की देवियो! देखो, यदि तुममेंसे कोई मुझ परब्रह्म पुरुषोत्तमको अपना पुत्र बनाना चाहो तो मैं पुत्र भी बन सकता हूँ; पर पुत्र बनाकर मुझे कैसे प्यार किया जाता है, वात्सल्यभावसे मेरा भजन कैसे होता है—इसकी तुम्हें शिक्षा लेनी पड़ेगी। इसीलिये इन सर्वथा अनमोल रत्नोंको निकालकर मैं जगत्‌में छोड़ दे रहा हूँ, ये ही तुम्हारे आदर्श होंगे; इन्हें पिरोकर अपने हृदयका हार बना लेना। हृदय आलोकित हो जायगा; उस आलोकमें आगे बढ़कर पुत्ररूपसे मुझे पा लोगी, अनन्तकालके लिये सुखी हो जाओगी।' अस्तु,

कंसप्रेरित पूतना यशोदानन्दनको मारने आयी। अपना विषपूरित स्तन यशोदानन्दनके मुखमें दे दिया, किंतु यशोदानन्दन विषमय दूधके साथ ही पूतनाके प्राणोंको भी पी गये। शरीर छोड़ते समय श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर ही पूतना मधुपुरीकी ओर दौड़ी। आह! उस क्षण यशोदाके प्राण भी मानो पूतनाके पीछे-पीछे दौड़ चले। यशोदाके प्राण तभी लौटे, तभी उनमें जीवनका संचार हुआ, जब पुत्रको लाकर गोपसुन्दरियोंने उनके वक्षःस्थलपर रखा। यशोदाने स्नेहवश उस समय परमात्मा श्रीकृष्णपर गो-पुच्छ फिराकर उनकी मंगल-कामना की।

(३)

क्रमशः यशोदानन्दन बढ़ रहे थे। एवं उसी क्रमसे मैयाका आनन्द भी प्रतिक्षण बढ़ रहा था। यशोदा मैया पुत्रको देख-देखकर फूली न समाती थीं।

जसुमति फूली फूली डोलति।
अति आनंद रहत सगरो दिन हसि हसि सब सों बोलति॥
मंगल गाय उठति अति रस सों अपने मनको भायो।
बिकसित कहति देख ब्रजसुंदरि कैसो लगत सुहायो॥

कभी पालनेपर पुत्रको सुलाकर आनन्दमें निमग्न होती रहतीं—

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित गमन होति नँद-घरनी॥
उमँगि-उमँगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी॥

इस प्रकार जननीका प्यार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र तो आज इक्यासी दिनके हो गये, पर जननीको ऐसा लगता था मानों कुछ देर पहले ही मैंने अपने पुत्रका यह सलोना मुख देखा है। आज वे अपने पुत्रको एक विशाल शकटके नीचे पलनेपर सुला आयी थीं। इसी समय कंसप्रेरित उत्कच नामक दैत्य आया, उस गाड़ीमें प्रविष्ट हो गया, शकटको यशोदानन्दनपर गिराकर वह उनको पीस डालना चाहता था। पर इससे पूर्व ही यशोदानन्दनने अपने पैरसे शकटको उलट दिया, शकटासुरके संसरणका अन्त कर दिया! इधर जब जननीने शकट-पतनका भयंकर शब्द सुना तो ये सोच बैठीं कि मेरा लाल तो अब जीवित रहा नहीं। बस, ढाढ़

मारकर एक बार चीत्कार कर उठीं और फिर सर्वथा प्राणशून्य-सी होकर गिर पड़ीं। बड़ी कठिनतासे गोपसुन्दरियाँ उनकी मूर्च्छा तोड़नेमें सफल हुईं। उन्होंने आँखें खोलकर अपने पुत्रको देखा, देखकर रोती हुई ही अपनेको धिक्कार देने लगीं—

बालो मे नवनीततश्च मृदुलस्त्रैमासिकोऽस्यान्तिके
हा कष्टं शकटस्य भूमिपतनाद् भङ्गोऽयमाकस्मिकः।
तच्छ्रुत्वापि न मे गतं यदसुभिस्तेनास्मि वज्राधिका
धिङ्मे वत्सलतामहो सुविदितं मातेति नामैव मे॥

'हाय रे हाय! मेरा यह नीलमणि नवनीतसे भी अधिक सुकोमल है, केवल तीन महीनेका है और इसके निकट शकट हठात् भूमिपर गिरकर टूट गया। यह बात सुनकर भी मेरे प्राण न निकले, मैं उन्हीं प्राणोंको लेकर अभीतक जीवित हूँ तो यही सत्य है कि मैं वज्रसे भी अधिक कठोर हूँ। मैं कहलानेमात्रको माता हूँ; मेरे ऐसे मातृत्वको, मातृवत्सलताको धिक्कार है।'

(४)

यशोदारानी कभी तो प्रार्थना करतीं—हे विधाता! मेरा वह दिन कब आयेगा, जब मैं अपने लालको घुटरूँ चलते देखूँगी, दूधकी दँतुलिया देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे, इसकी तोतली बोली सुनकर कानोंमें अमृत बहेगा—

नंद घरनि आनँदभरी, सुत स्याम खिलावै। कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहि मनावै॥
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की देखौं इन नैननि। कबहिं कमल मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि॥
चूमति कर पग अधर भ्रू, लटकति लट चूमति। कहा बरनि सूरज करै, कहँ पावे सो मति॥

—तथा कभी श्रीकृष्णचन्द्रसे ही निहोरा करने जातीं—

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हँसि कैधौं जननि कहै कब मोहि॥

जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए क्रमशः श्रीकृष्णचन्द्र बोलने भी लगे, घुटरूँ भी चलने लगे और फिर खड़े होकर भी चलने लगे। इतनेमें वर्ष पूरा हो गया, यशोदारानीने अपने पुत्रकी प्रथम वर्षगाँठ मनायी। इसी समय कंसने तृणावर्त दैत्यको भेजा। वह आया और यशोदाके नीलमणिको उड़ाकर आकाशमें चला गया। यशोदा मृतवत्सा गौकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं—

'भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः।'

इस बार जननीके जीवनकी आशा किसीको न थी, पर जब श्रीकृष्णचन्द्र तृणावर्तको चूर्ण-विचूर्णकर लौटे, गोपियाँ उन्हें दैत्यके छिन्न-भिन्न शरीरपरसे उठा लायीं, तो तत्क्षण यशोदाके प्राण भी लौट आये—

शिशुमुपसद्य यशोदा दनुजहतं द्राक् चिचेत लीनापि।
वर्षाजलमुपलभ्य प्राणिति जातिर्यथेन्द्रगोपाणाम्॥

'दैत्यके द्वारा अपहत शिशुको पाकर महाप्रयाण (मृत्यु)-में लीन होनेपर भी यशोदा उसी क्षण वैसे ही चैतन्य हो गयीं, जैसे वर्षाका जल पाकर इन्द्रगोप (बीरबहूटी) कीटकी भाँति जीवित हो जाती है।'

(५)

यशोदा एवं श्रीकृष्णचन्द्रमें होड़ लगी रहती थी। यशोदाका वात्सल्य उमड़ता, उसे देखकर उससे सौगुने परिमाणमें श्रीकृष्णचन्द्रका लीलामाधुर्य प्रकाशित होता; फिर इस लीलामाधुरीको देखकर सहस्रगुनी मात्रामें

यशोदाका भावसिन्धु तरंगित हो उठता; इन भावलहरियोंसे धुलकर पुनः श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकिरणें निखर उठतीं, क्षणभर पूर्व जो थीं, उससे लक्षगुणित परिमाणमें चमक उठतीं—इस क्रमसे बढ़कर यशोदाका वात्सल्य अनन्त, असीम, अपार बन गया था। उसमें डूबी हुई यशोदा और सब कुछ भूल गयी थीं, केवल नीलमणि ही उनके नेत्रोंमें नाचते रहते थे। कब दिन हुआ, कब रात्रि आयी, यशोदाको यह भी किसीके बतानेपर ही भान होता था। उनको क्षणभरके लिये भावसमाधिसे जगानेके लिये ही मानो यशोदानन्दनने मृत्तिका-भक्षणकी लीला की। श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है, यह सुनकर यशोदा उनका मुख खुलाकर मिट्टी ढूँढ़ने गयीं और उनके मुखमें सारा विश्व अवस्थित देखा, देखकर एक बार तो काँप उठीं—

देखे चर अरु अचर सिंधु कानन सरि सरिबर। देख्यौ धरनि अकास सूर खेचर ससि गिरिबर॥
देखे काल सजीव लोक जसुदा नंदादिक। देखे सुर अरु असुर पवन पंनग तपसाधिक॥
भनि 'मान' अमित ब्रह्मांड लखि देखि अनल तोखन तपतु।
मुख सूखि बचनु आवत नहीं, महरि गातु थर थर कँपतु॥

किंतु इतनेमें ही श्रीकृष्णचन्द्रकी वैष्णवी मायाका विस्तार हुआ; यशोदा-वात्सल्यसागरमें एक लहर उठी, वह यशोदाके इस विश्वदर्शनकी स्मृतितकको बहा ले गयी, नीलमणिको गोदमें लेकर यशोदा अपने प्यारसे उन्हें स्नान कराने लगीं—

अंक में लगाइ नंद नंदको अनंद माइ। ग्यान गूढ भूलि गौ, भयो सुपुत्र प्रेम आइ॥
देखि बाल लाल कौं फँसी सु मोह फाँस आइ।
सीस सूँघि चूमि चारु दूध दै हिये अघाइ॥

(६)

यशोदा भूली रहती थीं। पर दिन तो पूरे होते ही थे। यशोदाके अनजानमें ही उनके पुत्रकी दूसरी वर्षगाँठ भी आ पहुँची। फिर देखते-देखते ही उनके नीलमणि दो वर्ष दो महीनेके हो गये। पर अब नीलमणि ऐसे, इतने चंचल हो गये थे कि यशोदाको एक क्षण भी चैन नहीं। गोपियोंके घर जाकर तो न जाने कितने दहीके भाँड फोड़ ही आया करते थे, एक दिन मैयाका वह दहीभाँड भी फोड़ दिया, जो उनके कुलमें वर्षोंसे सुरक्षित चला आ रहा था। जननीने डरानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णचन्द्रको ऊखलमें बाँधा। सारा विश्व अनन्त कालतक यशोदाकी इस चेष्टापर बलिहार जायगा—

जिन बाँध्यौ सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यौ सकत न छोरी॥

इस बन्धनको निमित्त बनाकर यशोदाके नीलमणिने दो अर्जुनवृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया। फिर तो व्रजवासी यशोदानन्दनकी रक्षाके लिये अतिशय व्याकुल हो गये। पूतनासे, शकटसे, तृणावर्तसे, वृक्षसे—इतनी बार तो नारायणने नीलमणिको बचा लिया; अब आगे यहाँ इस गोकुलमें तो एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। गोपोंने परामर्श करके निश्चय कर लिया—बस, इसी क्षण वृन्दावन चले जाना है। यही हुआ, यशोदा अपने नीलमणिको लेकर वृन्दावन चली आयीं।

(७)

वृन्दावन आनेके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रकी अनेकों भुवनमोहिनी लीलाओंका प्रकाश हुआ। उन्हें गोपबालकोंके मुखसे सुन-सुनकर तथा कुछको अपनी आँखोंसे देखकर यशोदा कभी तो आनन्दमें निमग्न हो जातीं, कभी पुत्रकी रक्षाके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठते।

श्रीकृष्णचन्द्रका तीसरा वर्ष अभी पूरा नहीं हुआ था, फिर भी वे बछड़ा चराने वनमें जाने लगे। वनमें वत्सासुर-वकासुर आदिको मारा। जब इन घटनाओंका विवरण जननी सुनती थीं तो पुत्रके अनिष्टकी आशंकासे उनके प्राण छटपट करने लगते। पाँचवें वर्षकी शुक्लाष्टमीसे श्रीकृष्णचन्द्रका गोचारण आरम्भ हुआ तथा इसी वर्ष ग्रीष्मके समय उनकी कालियदमन-लीला हुई। कालियके बन्धनमें पुत्रको बँधा देखकर यशोदाकी जो दशा हुई थी, उसे चित्रित करनेकी क्षमता किसीमें नहीं। छठे वर्षमें जैसी-जैसी विविध मनोहारिणी गोष्ठक्रीडा श्रीकृष्णचन्द्रने की, उसे सुन-सुन यशोदाको कितना सुख हुआ था, इसे भी वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं। सातवें वर्ष धेनुकवधकी घटना हुई, आठवें वर्ष गोवर्धनधारणकी लीला हुई, नवम वर्षमें सुदर्शनका उद्धार हुआ, दसवें वर्ष अनेकों आनन्दमयी बालक्रीड़ाएँ हुईं, ग्यारहवें वर्ष अरिष्टवध हुआ, बारहवें वर्षके गौण फाल्गुनमासकी द्वादशीको केशी दैत्यका उद्धार हुआ। इन-इन अवसरोंपर यशोदाके हृदयमें हर्ष अथवा दुःखकी जो धाराएँ फूट निकलती थीं, उनमें यशोदा स्वयं तो डूब ही जातीं, सारे व्रजको भी निमग्न कर देती थीं। इस प्रकार ग्यारह वर्ष छः महीने यशोदारानीके भवनको श्रीकृष्णचन्द्र आलोकित करते रहे, किंतु अब यह आलोक मधुपुरी जानेवाला था। श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले जानेके लिये अक्रूर आ ही गये। वही फाल्गुन द्वादशीकी सन्ध्या थी, अक्रूरने आकर यशोदाके हृदयपर मानो अतिक्रूर वज्र गिरा दिया। सारी रात व्रजेश्वर व्रजरानी यशोदाको समझाते रहे, पर यशोदा किसी प्रकार भी सहमत नहीं हो रही थीं, किसी हालतमें पुत्रको कंसकी रंगशाला देख आनेकी अनुमति नहीं देती थीं। आखिर योगमायाने मायाका विस्तार किया, यशोदा भ्रान्त हो गयीं। अनुमति तो उन्होंने फिर भी नहीं दी, पर अबतक जो विरोध कर रही थीं, वह न करके आँसू ढालने लगीं। विदा होते समय यशोदारानीकी जो करुण दशा थी, उसे देखकर कौन नहीं रो पड़ा। आह!

यात्रामङ्गलसम्पदं न कुरुते व्यग्रा तदात्वोचितां
वात्सल्यौपयिकञ्च नोपनयते पाथेयमुद्भ्रान्तधीः।
धूलीजालमसौ विलोचनजलैर्जम्बालयन्ती परं
गोविन्दं परिरभ्य नन्दगृहिणी नीरन्ध्रमाक्रन्दति॥

व्यग्र हुई यशोदा यात्राके समय करनेयोग्य मंगलकार्य भी नहीं कर रही हैं। इतनी भ्रान्तचित्त हो गयी हैं कि अपने वात्सल्यके उपयुक्त पुत्रको कोई पाथेय (राहखर्च)-तक नहीं दे रही हैं, देना भूल गयी हैं। श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर निरन्तर रो रहीं है, उनके अजस्त्र अश्रुप्रवाहसे भूमि पंकिल हो रही है।

रथ श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर चल पड़ा। रथचक्रों (पहियों)-के चिह्न भूमिपर अंकित होने लगे, मानो धरारूपिणी यशोदाके छिदे हुए हृदयको पृथ्वीदेवी व्यक्त कर रही थीं।

(८)

श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें जननी यशोदाकी क्या दशा हुई, इसे यथार्थ वर्णन करनेकी सामर्थ्य सरस्वतीमें भी नहीं। यशोदामैया वास्तवमें विक्षिप्त हो गयीं। जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र रथपर बैठे थे, वहाँ प्रतिदिन चली आतीं। उन्हें दीखता अभी-अभी मेरे नीलमणिको अक्रूर लिये जा रहे हैं! वे चीत्कार कर उठतीं—'अरे! क्या व्रजमें कोई नहीं, जो मेरे जाते हुए नीलमणिको रोक ले, पकड़ ले। वह देखो, रथ बढ़ा जा रहा है, मेरे प्राण लिये जा रहा है, मैं दौड़ नहीं पा रही हूँ, कोई दौड़कर मेरे नीलमणिको पकड़ लो, भैया!'

कभी जड-चेतन, पशु-पक्षी, मनुष्य—जो कोई भी दृष्टिके सामने आ जाता, उसीसे वसुदेवपत्नी देवकीको अनेकों सन्देश भेजतीं। उन सन्देशोंमें एक यह भी था—

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत नित रहियो।
जदपि टेव तुम जानत उन की, तऊ मोहि कहि आवै॥
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कों माखन रोटी भावै।
तेल उबटनो अरु तातो जल देखत ही भजि जावै॥
जोइ जोइ माँगत, सोइ सोइ देती क्रम क्रम करि करि न्हावै॥
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ़्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच॥

किसी पथिकने यशोदाका यह सन्देश श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कह भी दिया। सान्त्वना देनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवको भेजा। उद्धव आये; पर जननीके आँसू पोंछ नहीं सके।

(९)

यशोदारानीका हृदय तो तब शीतल हुआ, जब वे कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं। राम-श्यामको हृदयसे लगाकर, गोदमें बैठाकर उन्होंने नव-जीवन पाया।

कुरुक्षेत्रसे जब यशोदारानी लौटीं तो उन्हें ऐसा लग रहा था कि जैसे उनके नीलमणि उनके साथ ही वृन्दावन लौट आये। यशोदाका उजड़ा हुआ संसार फिरसे बस गया।

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीला समेटनेवाले थे। इसीलिये अपनी जननी यशोदाको भी पहलेसे भेज दिया। जब वृषभानुनन्दिनी गोलोकविहारिणी श्रीराधाकिशोरीको वे विदा करने लगे तो गोलोकके उसी दिव्यातिदिव्य विमानपर जननीको भी बिठाया तथा राधाकिशोरीके साथ ही यशोदा अन्तर्धान हो गयीं, गोलोकमें पधार गयीं।

जगज्जननी श्रीराधा

(क) गोलोकमें आविर्भाव

कल्पका आरम्भ है। आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र गोलोकके सुरम्य रासमण्डलमें विराजित हैं। गोलोकविहारीका अनन्त ऐश्वर्य झाँक रहा है, झाँककर देख रहा है—आज अभिनय आरम्भ होनेका समय हुआ या नहीं? अभिनयके दर्शक चतुर्भुज श्रीनारायण, पंचवक्त्र महेश्वर, चतुर्मुख ब्रह्मा, सर्वसाक्षी धर्म, वागधिष्ठात्री सरस्वती, ऐश्वर्यकी अधिदेवी महालक्ष्मी, जगज्जननी दुर्गा, जपमालिनी सावित्री—ये सभी तो रंगमंचपर आ गये हैं, लीलासूत्रधार श्रीगोविन्द भी उपस्थित हैं; पर सूत्रधारके प्राणसूत्र जिनके हाथ हैं, वे अभी नहीं आयी हैं। देववृन्द आश्चर्य-विस्फारित नेत्रोंसे मंच—रासमण्डलकी ओर देखने लगते हैं।

किंतु अब विलम्ब नहीं। देवोंने देखा—गोलोकविहारी श्रीगोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें एक कम्पन-सा हुआ, नहीं-नहीं, ओह! एक कन्याका आविर्भाव हुआ है; अतीत, वर्तमान, भविष्यका समस्त सौन्दर्य पुंजीभूत होकर सामने आ गया है। आयु सोलह वर्षकी है; सुकोमलतम अंग यौवनभारसे दबे जा रहे हैं; बन्धुजीव-पुष्प-जैसे अरुण अधर हैं; उज्ज्वल दशनोंकी शोभाके आगे मुक्तापंक्तिकी अमित शोभा तुच्छ, हेय बन जा रही है, शरत्कालीन कोटि राकाचन्द्रोंका सौन्दर्य मुखपर नाच रहा है; ओह! उस सुन्दर सीमन्त (माँग)-की शोभा वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है? चारु पंकजलोचनोंका सौन्दर्य कौन बताये? सुठाम नासा, सुन्दर चन्दन-चित्रित गण्डयुगल—इनकी तुलना किससे करें? कर्णयुगल रत्नभूषित हैं; मणिमाला, हीरक-कण्ठहार, रत्न केयूर, रत्नकंकण—इनसे श्रीअंगोंपर एक किरणजाल फैला है; भालपर

सिन्दूरविन्दु कितना मनोहर है। मालतीमाला-विभूषित, सुसंस्कृत केशपाश, उनमें सुगन्धित कबरीभारकी सुषमा कैसी निराली है! स्थलपद्मोंकी शोभा तो सिमटकर इन युगल चरणतलोंमें आ गयी है, चरणविन्यास हंसको लज्जित कर रहा है; अनेक आभरणोंसे विभूषित श्रीअंगोंसे सौन्दर्यकी सरिता प्रवाहित हो रही है। रूपधर्षित हुए देववृन्द इस सौन्दर्यको देखते ही रह जाते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वसे आविर्भूत यह कन्या, यह सुन्दरी ही श्रीराधा हैं। 'राधा' नाम इसलिये हुआ कि 'रास' मण्डलमें प्रकट हुईं तथा प्रकट होते ही पुष्प चयनकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें अर्घ्य समर्पित करनेके लिये 'धावित' हुईं—दौड़ीं।

उसी समय इन्हीं श्रीराधाके लोमकूपोंसे लक्षकोटि गोपसुन्दरियाँ प्रकट हुईं। वास्तवमें तो यह आविर्भावकी लीला प्रपंचकी दृष्टिसे ही हुई। अन्यथा प्रलय, सृजन, फिर संहार, फिर सृष्टि—इस प्रवाहसे उस पार श्रीराधाकी, राधाकान्तकी लीला, उनका नित्य निकुंजविहार तो अनादिकालसे सपरिकर नित्य दो रूपोंमें प्रतिष्ठित रहकर चल रहा है एवं अनन्तकालतक चलता रहेगा। प्रलयकी छाया उसे छू नहीं सकती, सृजनका कम्पन उसे उद्वेलित नहीं कर सकता। श्रीराधाका यह आविर्भाव तो प्रपंचगत कतिपय बड़भागी ऋषियोंकी चित्तभूमिपर कल्पके आरम्भमें उस लीलाका उन्मेष किस क्रमसे हुआ, इसका एक निदर्शनमात्र है।

अब रासेश्वरी श्रीराधाके भारतवर्षमें अवतरित होनेकी भूमिका कैसे बनी; उनके नित्य रासकी, नित्य निकुंजलीलाकी एक झाँकीका दर्शन करते हैं।

(ख) अवतरण

नृगपुत्र राजा सुचन्द्रका एवं पितरोंकी मानसी कन्या सुचन्द्रपत्नी कलावतीका पुनर्जन्म हुआ। सुचन्द्र तो वृषभानु गोपके रूपमें उत्पन्न हुए एवं कलावती कीर्तिदा गोपीके रूपमें। यथासमय दोनोंका विवाह होकर पुनर्मिलन हुआ। एक तो राजा सुचन्द्र हरिके अंशसे ही उत्पन्न हुए थे; उसपर उन्होंने पत्नीसहित दिव्य द्वादश वर्षोंतक तप करके ब्रह्माको सन्तुष्ट किया था। इसीलिये कमलयोनिने ही यह वर दिया था—'द्वापरके अन्तमें स्वयं श्रीराधा तुम दोनोंकी पुत्री बनेंगी।' उस वरकी सिद्धिके लिये ही सुचन्द्र वृषभानु गोप बने हैं। इन्हीं वृषभानुमें इनके जन्मके समय सूर्यका भी आवेश हो गया; क्योंकि सूर्यने तपस्याकर श्रीकृष्णचन्द्रसे एक कन्या-रत्नकी याचना की थी तथा श्रीकृष्णचन्द्रने सन्तुष्ट होकर 'तथास्तु' कहा था। इसके अतिरिक्त नित्यलीलाके वृषभानु एवं कीर्तिदा—ये दोनों भी इन्हीं वृषभानु गोप एवं कीर्तिदामें समाविष्ट हो गये; क्योंकि स्वयं गोलोकविहारिणी राधाका अवतरण होने जा रहा है। अस्तु, इस प्रकार योगमायाने द्वापरके अन्तमें रासेश्वरीके लिये उपयुक्त क्षेत्रकी रचना कर दी।

धीरे-धीरे वह निर्दिष्ट समय भी आ पहुँचा। वृषभानुके व्रजकी गोपसुन्दरियोंने एक दिन अकस्मात् देखा—कीर्तिदा रानीके अंग पीले हो गये हैं; गर्भके अन्य लक्षण भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। फिर तो उनके हर्षका पार नहीं। कानों-कान यह समाचार वृषभानु-व्रजमें सुखस्रोत बनकर फैलने लगा। सभी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

वह मुहूर्त आया। भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमी है; चन्द्रवासर है, मध्याह्न है। कीर्तिदा रानी रत्नपर्यंकपर विराजित हैं। एक घड़ी पूर्वसे प्रसवका आभास-सा मिलने लगा है। वृद्धा गोपिकाएँ उन्हें घेरे बैठी हैं। इस समय आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। सहसा प्रसूतिगृहमें एक ज्योति फैल जाती है—इतनी तीव्र ज्योति कि सबके नेत्र निमीलित हो गये। इसी समय कीर्तिदा रानीने प्रसव किया। प्रसवमें केवल वायु निकला; इतने दिन उदर तो वायुसे ही पूर्ण था। किंतु इससे पूर्व कि कीर्तिदा रानी एवं अन्य गोपिकाएँ आँख खोलकर

देखें, उसी वायुकम्पनके स्थानपर एक बालिका प्रकट हो गयी। सूतिकागार उस बालिकाके लावण्यसे प्लावित होने लगा। गोपसुन्दरियोंके नेत्र खुले, उन्होंने देखा—शत-सहस्र शरच्चन्द्रोंकी कान्ति लिये एक बालिका कीर्तिदाके सामने लेटी है, कीर्तिदा रानीने प्रसव किया है। कीर्तिदा रानीको यह प्रतीत हुआ—मेरे द्वारा सद्य:प्रसूत इस कन्याके अंगोंमें मानो किसी दिव्यातिदिव्य शतमूली-प्रसूनकी आभा भरी हो, अथवा रक्तवर्णकी तडिल्लहरी ही बालिकारूपमें परिणत हो गयी हो। आनन्दविवशा कीर्तिदा रानी कुछ बोलना चाहती हैं, पर बोल नहीं पातीं। मन-ही-मन दो लक्ष गोदानोंका संकल्प करती हैं।

संयोगकी बात! आज ही कुछ देर पहलेसे करभाजन, शृंगी, गर्ग एवं दुर्वासा—चारों वहाँ आये हुए हैं। गोपोंकी प्रार्थनापर वृषभानुको आनन्दमें निमग्न करते हुए वे श्रीराधाके ग्रह-नक्षत्रका निर्णय कर रहे हैं—

करभाजन शृंगी जु गर्गमुनि लगन नछत बल सोध री।
भए अचरज ग्रह देखि परस्पर कहत सबन प्रति बोध री॥
सुदि भादौं सुभ मास, अष्टमी अनुराधा के सोध री।
प्रीति जोग, बल बालव करनैं, लगन धनुष बर बोध री॥

बालकका नाम रखा गया—'राधा'! 'राधिका' नाम वृषभानु एवं कीर्तिदा दोनोंने मिलकर रखा—लोहितवर्ण विद्युत्-लहरी-सी अंगप्रभा होनेके कारण। राधा—राधिका नाम जगत्में विख्यात हुआ।

इस प्रकार अयोनिसम्भवा श्रीराधा भूतलपर श्रीवृषभानु एवं कीर्तिदा रानीकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं।

(ग) देवर्षिको दर्शन

वीणाकी झनकारपर हरि-गुण-गान करते हुए देवर्षि नारद व्रजमें घूम रहे हैं। कुछ देर पहले व्रजेश्वर नन्दके घर गये थे। वहाँ नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके उन्होंने दर्शन किये। दर्शन करनेपर मनमें आया—जब स्वयं गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्र भूतलपर अवतरित हुए हैं तो गोलोकेश्वरी श्रीराधा भी कहीं-न-कहीं गोपीरूपमें अवश्य आयी हैं। उन्हीं श्रीराधाको ढूँढ़ते हुए देवर्षि व्रजके प्रत्येक गृहके सामने ठहर-ठहरकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। देवर्षिका दिव्य ज्ञान कुण्ठित हो गया है, सर्वज्ञ नारदको श्रीराधाका अनुसंधान नहीं मिल रहा है; मानो योगमाया देवर्षिको निमित्त बनाकर राधादर्शनकी यह साधना जगत्को बता रही हों—पहले श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होते हैं, उनके दर्शनोंसे श्रीराधाके दर्शनकी इच्छा जाग्रत् होती है; फिर श्रीराधाको पानेके लिये व्याकुल होकर व्रजकी गलियोंमें भटकना पड़ता है। अस्तु, घूमते हुए देवर्षि वृषभानु-प्रासादके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। वह विशाल मन्दिर देवर्षिको मानो अपनी ओर आकर्षित कर रहा हो। देवर्षि भीतर प्रवेश कर जाते हैं। वृषभानु गोपकी दृष्टि उनपर पड़ती है। वे दौड़कर नारदजीके चरणोंमें लोट जाते हैं।

विधिवत् पाद्य-अर्घ्यसे पूजा करके देवर्षिको प्रसन्न अनुभवकर वृषभानु गोप अपने सुन्दर पुत्र श्रीदामको गोदमें उठा लाते हैं, लाकर मुनिके चरणोंमें डाल देते हैं। बालकका स्पर्श होते ही मुनिके नेत्रोंमें स्नेहाश्रु भर आता है; उत्तरीयसे अपनी आँखें पोंछकर उसे उठाकर वे हृदयसे लगा लेते हैं तथा गद्गद कण्ठसे बालकका भविष्य बतलाते हैं—'वृषभानु! सुनो, तुम्हारा यह पुत्र नन्दनन्दनका, बलरामका प्रिय सखा होगा।'

तो क्या रासेश्वरी श्रीराधा यहाँ भी नहीं हैं? वृषभानु उन्हें तो लाया नहीं?—यह सोचकर निराश-से हुए देवर्षि चलनेको उद्यत हुए। उसी समय वृषभानुने कहा—'भगवन्! मेरी एक पुत्री है; सुन्दर तो वह इतनी है मानो सौन्दर्यकी खानि—कोई देवपत्नी इस रूपमें उतर आयी हो। पर आश्चर्य यह है कि वह अपनी आँखें सदा निमीलित रखती है; हमलोगोंकी बातें भी उसके कानोंमें प्रवेश नहीं करतीं, उन्मादिनी-सी दीखती

है; इसलिये हे भगवत्तम! श्रीचरणोंमें मेरी यह प्रार्थना है कि एक बार अपनी सुप्रसन्न दृष्टि उस बालिकापर भी डालकर उसे प्रकृतिस्थ कर दें।'

आश्चर्यमें भरे नारद वृषभानुके पीछे-पीछे अन्तःपुरमें चले जाते हैं। जाकर देखा—स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा-सी एक बालिका भूमिपर लोट रही है। देखते ही नारदका धैर्य जाता रहा, अपनेको वे किसी प्रकार भी संवरण न कर सके; वे दौड़े तथा बालिकाको उठाकर उन्होंने अंकमें ले लिया। एक परमानन्द-सिन्धुकी लहरें देवर्षिको लपेट लेती हैं, उनके प्राणोंमें अननुभूतपूर्व एक अद्भुत प्रेमका संचार हो जाता है, वे बालिकाको क्रोड़में धारण किये मूर्च्छित हो जाते हैं। दो घड़ीके लिये तो उनकी यह दशा है, मानो उनका शरीर एक शिलाखण्ड हो। दो घड़ीके पश्चात् जाकर कहीं बाह्यज्ञान होता है तथा बालिकाका अप्रतिम सौन्दर्य निहारकर विस्मयकी सीमा नहीं रहती। वे मन-ही-मन सोचने लगते हैं—'ओह! ऐसे सौन्दर्यके दर्शन मुझे तो कभी नहीं हुए। मेरी अबाध गति है, सभी लोकोंमें स्वच्छन्द विचरता हूँ; ब्रह्मलोक, रुद्रलोक, इन्द्रलोक—इनमें कहीं भी इस शोभासागरका एक विन्दु भी मैंने नहीं देखा; महामाया भगवती शैलेन्द्रनन्दिनीके दर्शन मैंने किये हैं, उनका सौन्दर्य चराचर-मोहन है; किंतु इतनी सुन्दर तो वे भी नहीं! लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति, विद्या आदि सुन्दरियाँ तो इस सौन्दर्यपुंजकी छाया भी नहीं छू पातीं। विष्णुके हर-विमोहन उस मोहिनी रूपको भी मैंने देखा है, पर इस अतुल रूपकी तुलनामें वह भी नहीं। बालिकाको देखते ही श्रीगोविन्द-चरणाम्बुजमें मेरी जैसी प्रीति उमड़ी, वैसी आजतक कभी नहीं हुई। बस, बस, यही श्रीराधा हैं; निश्चय ही यही श्रीरासेश्वरी हैं।—देवर्षिका अन्तर्हृदय आलोकित हो उठा।'

'वृषभानु! कुछ क्षणके लिये तुम बाहर चले जाओ; बालिकाके सम्बन्धमें कुछ करना चाहता हूँ'—गद्‌गद कण्ठसे देवर्षिने धीरे-धीरे कहा। सरलमति वृषभानु देवर्षिको प्रणामकर बाहर चले आये। एकान्त पाकर नारदने श्रीराधाका स्तवन आरम्भ किया—'देवि! महायोगमयि! महाप्रभामयि! मायेश्वरि! मेरे महान् सौभाग्यसे, न जाने किन अनन्त शुभ कर्मोंसे रचित सौभाग्यका फल देने तुम मेरे दृष्टिपथमें उतर आयी हो।'

'देवि! तुम्हीं ब्रह्म हो; सच्चिदानन्द ब्रह्मके सत्-अंशमें स्थित सन्धिनी शक्तिकी चरम परिणति—विशुद्ध तत्त्व तुम्हीं हो; विशुद्ध सत्त्वमयी तुममें ही चिदंशकी संवित् शक्ति, संवित्‌की चरम परिणति विद्यात्मिका परा शक्ति—ज्ञानशक्तिका भी निवास है; तुम्हीं आनन्दांशकी ह्लादिनी शक्ति, ह्लादिनीकी भी चरम परिणति महाभावरूपिणी हो; आश्चर्यवैभवमयि! तुम्हारी एक कलाका भी ज्ञान ब्रह्म-रुद्रतकके लिये कठिन है, फिर योगीन्द्रगणके ध्यानपथमें तो तुम आ ही कैसे सकती हो! मेरी बुद्धि तो यह कह रही है कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति—ये सभी तुम ईश्वरीके अंशमात्र हैं। ××× श्रीकृष्णचन्द्रकी आनन्दरूपिणी शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हीं उनकी प्राणेश्वरी हो—इसमें कोई संशय नहीं; निश्चय ही तुम्हारे ही साथ श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावनमें क्रीड़ा करते हैं। ओह देवि! जब तुम्हारा कौमार रूप ही ऐसा विश्वविमोहन है, तब वह तरुण रूप कितना विलक्षण होगा!'

कहते-कहते नारदका कण्ठ रुद्ध होने लगता है। प्राणोंमें श्रीराधाके तरुणरूपको देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा भर जाती है। वे वहींपर टँगे मणिपालनेपर श्रीराधाको लिटा देते हैं तथा उनकी ओर देखते हुए बारम्बार प्रणाम करने लगते हैं, तरुणरूपसे दर्शन देनेके लिये प्रार्थना करते हैं। नारदके अन्तर्हृदयमें मानो कोई कह देता है—देवर्षे! श्रीकृष्णकी वन्दना करो, तभी श्रीकृष्णप्रियतमाके नेत्र तुम्हारी ओर फिरेंगे। देवर्षि श्रीकृष्णचन्द्रकी जय-जयकार कर उठते हैं—

जय कृष्ण मनोहारिन् जय वृन्दावनप्रिय। जय भ्रूभङ्गललित जय वेणुरवाकुल॥

जय बर्हकृतोत्तंस जय गोपीविमोहन। जय कुङ्कुमलिप्ताङ्ग जय रत्नविभूषण॥

(पद्मपुराण पा० खं०)

—बस, इसी समय दृश्य बदल जाता है। मणिपालनेपर विराजित वृषभानुकुमारी अन्तर्हित हो जाती हैं तथा नारदके सामने किशोरी श्रीराधाका आविर्भाव हो जाता है। इतना ही नहीं, दिव्य भूषण-वसनसे सज्जित अगणित सखियाँ भी वहाँ प्रकट हो जातीं हैं, श्रीराधाको घेर लेती हैं। वह रूप! वह सौन्दर्य!—नारदके नेत्र निमेषशून्य एवं अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानो नारद सचमुच अन्तिम अवस्थामें जा पहुँचे हों।

राधाचरणाम्बुकणिकाका स्पर्श कराकर एक सखी देवर्षिको चैतन्य करती है और कहती है—'मुनिवर्य! अनन्त सौभाग्यसे श्रीराधाके दर्शन तुम्हें हुए हैं। महाभागवतोंको भी इनके दर्शन दुर्लभ हैं। देखो, ये अब तुम्हारे सामनेसे फिर अन्तर्हित हो जायँगी, प्रदक्षिणा करके नमस्कार कर लो। जाओ। गिरिराज-परिसरमें, कुसुमसरोवरके तटपर एक अशोकलता फूल रही है, उसके सौरभसे वृन्दावन सुवासित हो रहा है, वहाँ उसके नीचे हम सबोंको अर्द्धरात्रिके समय देख पाओगे.........।'

श्रीराधाका वह कैशोररूप अन्तर्हित हो गया। बाल्यरूपसे रत्नपालनेपर वे पुनः प्रकट हो गयीं।

द्वारपर खड़े वृषभानु प्रतीक्षा कर रहे थे। जय-जयकारकी ध्वनि सुनकर आश्चर्य कर रहे थे। अश्रुपूरित कण्ठसे देवर्षिने पुकारा, वे भीतर आ गये। देवर्षि बोले—'वृषभानु! इस बालिकाका यही स्वभाव है; देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इसका स्वभाव बदल दें। किंतु तुम्हारे भाग्यकी सीमा नहीं; जिस गृहमें तुम्हारी पुत्रीके चरणचिह्न अंकित हैं, वहाँ लक्ष्मीसहित नारायण, समस्त देव नित्य निवास करते हैं।' यह कहकर स्खलित गतिसे नारद चल पड़ते हैं। वीणामें राधायशोगानकी लहरी भरते, आँसू बहाते हुए वे अशोकवनकी ओर चले गये।

× × ×

उसी दिन कीर्तिदा रानीकी गोदमें पुत्रीको देखकर प्रेमविवश हुए वृषभानु लाड़ लड़ाने लगे। नारदके गानका इतना-सा अंश वृषभानुके कानमें प्रवेश कर गया था '**जय कृष्ण मनोहारिन्!**' जानकर नहीं, लाड़ लड़ाते समय यों ही उनके मुखसे निकल गया—**जय कृष्ण मनोहारिन्!** बस, भानुकुमारी श्रीराधा आँखें खोलकर देखने लगीं। वृषभानुके हर्षका पार नहीं, कीर्तिदा आनन्दमें निमग्न हो गयीं; उन्हें तो पुत्रीको प्रकृतिस्थ करनेका मन्त्र प्राप्त हो गया। इससे पूर्व जब-जब नन्दगेहिनी यशोदा कीर्तिदासे मिलने आयी हैं, तब-तब भानुकुमारीने आँखें खोल-खोलकर देखा है।

(घ) श्रीकृष्णचन्द्र-मिलन

एक दिनकी बात है, भाण्डीर वनमें एक वटके नीचे व्रजेश्वर नन्द श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये खड़े हैं। अचानक काली घटाएँ घिर आती हैं। वनमें अन्धकार छा जाता है। वायु बड़े वेगसे बहने लगती है। तरु-लताएँ काँप उठती हैं। कदम्ब-तमालपत्र छिन्न हो-होकर गिरने लगते हैं। नन्दबाबाको चिन्ता हो रही है कि श्रीकृष्णकी रक्षा कैसे हो?

गोपोंका गोचारण निरीक्षण करने वे आ रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र साथ चलनेके लिये मचल गये; किसी प्रकार नहीं माने, रोने लगे। इसीलिये वे उन्हें साथ ले आये थे। यहाँ वनमें आनेपर गोरक्षकोंको तो उन्होंने दूसरे वनकी गायें एकत्रकर वहीं ले आनेके लिये भेज दिया, स्वयं उन गायोंकी सँभालके लिये खड़े रहे। इतनेमें यह झंझावात प्रारम्भ हो गया। कोई गोरक्षक भी नहीं कि उसे गायें सँभलाकर वे भवनकी ओर जायँ; तथा यों ही गायोंको छोड़ भी दें तो जायँ कैसे? बड़ी-बड़ी बूँदें जो आरम्भ हो गयी हैं। अतः कोई भी

उपाय न देखकर व्रजेश्वर एकान्त मनसे नारायणका स्मरण करने लगते हैं।

मानो कोटि सूर्य एक साथ उदय हुए हों, इस प्रकार दिशाएँ उद्भासित हो जाती हैं; तथा वह झंझावात तो न जाने कहाँ चला गया! नन्दराय आँखें खोलकर देखते हैं—सामने एक बालिका खड़ी है। 'हैं—हैं! वृषभानुकुमारी! तू यहाँ इस समय कैसे आयी, बेटी!' व्रजेश्वरने अचकचाकर कहा। किंतु दूसरे ही क्षण अन्तर्हृदयमें एक दिव्य ज्ञानका उन्मेष होने लगता है, मौन होकर ये वृषभानुनन्दिनीकी ओर देखने लगते हैं—कोटि चन्द्रोंकी द्युति मुखमण्डलपर झलमल-झलमल कर रही है, नीलवसनभूषित अंग हैं; अंगोंपर कांची, कंकण, हार, अंगद, अंगुरीयक मंजीर यथास्थान सुशोभित हैं; चंचल कर्णकुण्डल तथा दिव्यातिदिव्य रत्नचूड़ामणिसे किरणें झर रही हैं; अंगोंके तेजका तो कहना ही क्या है, भानुकुमारीकी अंगप्रभासे ही वन आलोकित हुआ है। नन्दरायको गर्गजीकी वे बातें भी स्मरण हो आयीं; पुत्रके नामकरण-संस्कारसे पूर्व उन्होंने एकान्तमें वृषभानुपुत्रीकी महिमा, श्रीराधातत्त्वकी बात बतलायी थी; पर उस समय तो नन्दराय सुन रहे थे और साथ-ही-साथ भूलते जा रहे थे; इस समय उन सबकी स्मृति हो आयी, सबका रहस्य सामने आ गया। अंजलि बाँधकर नन्दरायने श्रीराधाको प्रणाम किया और बोले—'देवि! मैं जान गया, पुरुषोत्तम श्रीहरिकी तुम प्राणेश्वरी हो एवं मेरी गोदमें तुम्हारे प्राणनाथ स्वयं पुरुषोत्तम श्रीहरि ही विराजित हैं; लो, देवि! ले जाओ; अपने प्राणेश्वरको साथ ले जाओ। किंतु..........।' नन्द कुछ रुक-से गये; श्रीकृष्णचन्द्रके भीति-विजड़ित नयनोंकी ओर उनकी दृष्टि चली गयी थी। क्षणभर बाद बोले—'किंतु देवि! यह बालक तो आखिर मेरा पुत्र ही है न! इसे मुझे ही लौटा देना।'—नन्दरायने श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाके हस्तकमलोंपर रख दिया। श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये गहन वनमें प्रविष्ट हो गयीं।

× × ×

वृन्दावनकी भूमिपर गोलोकका दिव्य रासमण्डल प्रकट होता है। श्रीराधा नन्दपुत्रको लिये उसी मण्डपमें चली आती हैं। सहसा नन्दपुत्र श्रीराधाकी गोदसे अन्तर्हित हो जाते हैं। वृषभानुनन्दिनी विस्मित होकर सोचने लगती हैं—नन्दरायने जिस बालकको सौंपा था—वह कहाँ चला गया? इतनेमें गोलोकविहारी नित्यकैशोरमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र दीख पड़ते हैं। अपने प्रियतमको देखकर वृषभानुनन्दिनीका हृदय भर आता है, प्रेमावेशसे वे विह्वल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगते हैं—'प्रिये! गोलोककी वे बातें भूल गयी हैं या अभी भी स्मरण हैं? मुझे भी भूल गयी क्या? मैं तो तुम्हें नहीं भूला। तुम्हें भूल जाऊँ, यह मेरे लिये असम्भव है। मेरे प्राणोंकी रानी! तुमसे अधिक प्रिय मेरे पास कुछ हो, तब तो तुम्हें भूलूँ। तुम्हीं बताओ, प्राणोंसे अधिक प्यारी वस्तुको कोई कैसे भूल सकता है?'

इस प्रकार रसिकेश्वर राधानाथ अपनी प्रियाको अतीतकी स्मृति दिलाकर, स्वरूपकी स्मृति कराकर, उन्हींके नामकी सुधासे उनको सिक्तकर प्रियतमा श्रीराधाका आनन्दवर्द्धन करने लगते हैं। राधाभावसिन्धुमें भी तरंगें उठने लगती हैं, भावके आवर्त बन जाते हैं; आवर्त राधानाथको रसके अतलतलमें डुबाने ही जा रहे थे कि उसी समय माला-कमण्डलु धारण किये जगद्विधाता चतुर्मुख ब्रह्मा आकाशसे नीचे उतर आते हैं; राधा-राधानाथके चरणोंमें वन्दना करते हैं। पुष्कर-तीर्थमें साठ हजार वर्षोंतक विधाताने श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना की थी, राधाचरणारविन्द-दर्शनका वर प्राप्त किया था। उसी वरकी पूर्तिके लिये एवं राधानाथकी मनोहारिणी लीलामें एक छोटा-सा अभिनय करनेके लिये योगमायाप्रेरित वे ठीक उपयुक्त समयपर आये हैं।

अस्तु, श्रीराधा एवं राधानाथको प्रणामकर दोनोंके बीचमें विधाता अग्नि प्रज्वलित करते हैं। अग्निमें विधिवत् हवन करते हैं। फिर विधाताके द्वारा बताये हुए विधानसे स्वयं रासेश्वर हवन करते हैं। इसके पश्चात्

रासेश्वरी-रासेश्वर दोनों ही सात बार अग्नि-प्रदक्षिणा करते हैं, अग्निदेवको प्रणाम करते हैं। विधाताकी आज्ञा मानकर श्रीराधा एक बार पुनः हुताशन-प्रदक्षिणा करके श्रीकृष्णचन्द्रके समीप आसन ग्रहण करती हैं। ब्रह्मा श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाका पाणिग्रहण करनेके लिये कहते हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्र राधा-हस्तकमलको अपने हस्तकमलपर धारण करते हैं। हस्तग्रहण होनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने सात वैदिक मन्त्रोंका पाठ किया। इसके पश्चात् श्रीराधा अपना हस्तकमल श्रीकृष्ण-वक्षःस्थलपर एवं श्रीकृष्णचन्द्र अपना हस्तपद्म श्रीराधाके पृष्ठदेशपर रखते हैं तथा श्रीराधा मन्त्र-समूहका पाठ करती हैं। आजानुलम्बित दिव्यातिदिव्य पारिजातनिर्मित कुसुममाला श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको पहनाती हैं, एवं श्रीकृष्णचन्द्र सुन्दर मनोहर वनमाला श्रीराधाके गलेमें डालते हैं। यह हो जानेपर कमलोद्भव श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें विराजितकर, दोनोंके अंजलि बाँधनेकी प्रार्थनाकर, दोनोंके द्वारा पाँच वैदिक मन्त्रोंका पाठ कराते हैं। अनन्तर श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करती हैं; जैसे पिता विधिवत् कन्यादान करे, वैसे सारी विधि सम्पन्न करते हुए विधाता श्रीराधाको श्रीकृष्ण-करकमलोंमें समर्पित करते हैं। आकाश दुन्दुभि, पटह, मुरज आदि देव-वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होने लगता है, आनन्दनिमग्न देववृन्द पारिजातपुष्पोंकी वर्षा करते हैं; गन्धर्व मधुर गान आरम्भ करते हैं, अप्सराएँ मनोहर नृत्य करने लगती हैं। व्रजगोपोंके, व्रजसुन्दरियोंके सर्वथा अनजानमें ही इस प्रकार वृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दनकी विवाहलीला सम्पन्न हो गयी।

× × ×

भाण्डीर-वनके उन निकुंजोंमें रसकी तरंगिणी बह चली; रासेश्वरी श्रीराधा, रासेश्वर श्रीकृष्ण—दोनों ही आनन्दविभोर होकर उसमें बह चले। जब इस स्रोतमें अन्य रसधाराएँ आकर मिलने लगीं—भावसन्धिका समय आया तो श्रीराधाको बाह्यज्ञान हुआ। वृषभानुनन्दिनी देखती हैं—मेरी गोदमें नन्दरायने जिस पुत्रको सौंपा था, वह तो है; शेष सब स्मृतिमात्र। श्रीकृष्णचन्द्रकी वह कैशोर-मूर्ति अन्तर्हित हो गयी है, पुनः वे बालकरूप हो गये हैं।

× × ×

नन्दनन्दनको श्रीराधा यशोदारानीके पास ले जाती हैं। 'मैया! वनमें झंझावात आरम्भ हो गया था; बाबा बोले—'तू इसे ले जा, घर पहुँचा दे।' बड़ी वर्षा हुई है; देखो, मेरी साड़ी सर्वथा भीग गयी है। मैं अब जाती हूँ; घरसे आये मुझे बहुत देर हो गयी है, मेरी मैया चिन्तित होगी; श्रीकृष्णको सँभाल लो'—यह कहकर वृषभानुनन्दिनीने श्रीकृष्णचन्द्रको यशोदारानीकी गोदमें रख दिया और स्वयं वृषभानुपुरकी ओर चल पड़ीं। यशोदारानीने देखा—साड़ी वास्तवमें सर्वथा आर्द्र है, प्रबल उत्कण्ठा हुई कि दूसरी साड़ी पहना दूँ; किंतु मैयाका शरीर निश्चेष्ट-सा हो गया—ओह! कीर्तिदाकी पुत्री इतनी सुन्दर है। मैया इस सौन्दर्यप्रतिमाकी ओर देखती ही रह गयीं और प्रतिमा देखते-ही-देखते उपवनके लताजालमें जा छिपी।

× × ×

वहाँ भाण्डीरवनमें व्रजेश्वर नन्दको इतनी ही स्मृति है कि वर्षाका ढंग हो रहा था, भानुकुमारीके साथ मैंने पुत्रको घर भेज दिया है।

अष्टसखी

श्रीराधाकिशोरीकी सखियाँ पाँच प्रकारकी मानी जाती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी। कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि तो सखी कहलाती हैं। कस्तूरी, मणिमंजरिका आदि नित्यसखी कही जाती हैं। शशिमुखी, वासन्ती, लासिका आदि प्राणसखीकी गणनामें हैं। कुरंगाक्षी, मंजुकेशी,

माधवी, मालती आदि प्रियसखी कही जाती हैं तथा श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या, सुदेवी—ये आठ परमप्रेष्ठसखीकी गणनामें हैं। ये आठों सखियाँ ही अष्टसखीके नामसे विख्यात हैं।

हृदयसे जुड़ी हुई अनन्त धमनियोंकी भाँति श्रीराधाकी समस्त सखियाँ राधा हृत्सरोवरसे निरन्तर प्रेमरस लेती हैं। लेकर उस रसको सर्वत्र फैलाती रहती हैं तथा साथ ही अपना प्रेमरस भी राधा-हृदयमें उँड़ेलती रहती हैं। इस रसविस्तारके कार्यमें श्रीललिता आदि अष्टसखियोंका सबसे प्रमुख स्थान है।

श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यकैशोरलीलामें श्रीललिताकी आयु चौदह वर्ष तीन मास बारह दिनकी रहती है। श्रीललितामें यह नित्य दिव्य आवेश रहता है कि इस समय मेरी आयु इतनी हुई है। इसी प्रकार उस लीलामें श्रीविशाखा चौदह वर्ष दो मास पन्द्रह दिन, श्रीचित्रा चौदह वर्ष एक मास उन्नीस दिन, श्रीइन्दुलेखा चौदह वर्ष दो मास बारह दिन, श्रीचम्पकलता चौदह वर्ष दो मास चौदह दिन, श्रीरंगदेवी चौदह वर्ष दो मास आठ दिन, श्रीतुंगविद्या चौदह वर्ष दो मास बीस दिन और श्रीसुदेवी चौदह वर्ष दो मास आठ दिनकी रहती हैं। अवश्य ही जब श्रीराधाकिशोरीकी लीलाका प्रपंचमें प्रकाश होता है, वे अवतरित होती हैं, तब ये भी उसी प्रकार अवतरित होती हैं—इनका जन्म होता है, कौमार आता है, पौगण्ड आता है, फिर कैशोरसे विभूषित होती हैं।

इन आठ सखियोंका जीवन-चरित्र श्रीराधामहारानीकी लीलामें सर्वथा अनुस्यूत रहता है। जो राधाभावसिन्धुका कोई-सा एक कण पा लेते हैं, वे ही इन सखियोंके दिव्य भुवनपावन चरित्रके सम्बन्धमें यत्किंचित् जान पाते हैं। वह भी एक-सा नहीं, जो जैसे पात्र हों। हमारे लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि श्रीराधाकिशोरीको स्मरण करते हुए हम इनकी वन्दना कर लें—

गोरोचनारुचिमनोहरकान्तिदेहां मायूरपुच्छतुलितच्छविचारुचेलाम्।
राधे तव प्रियसखीं च गुरुं सखीनां ताम्बूलभक्तिललितां ललितां नमामि॥

हे राधे! गोरोचनके समान जिनके श्रीअंगोंकी मनोहर कान्ति है, जो मयूरपिच्छके समान चित्रित साड़ी धारण करती हैं, तुम्हारी ताम्बूलसेवा जिनके अधिकारमें है, इस सेवासे जो अत्यन्त ललित (सुन्दर) हो रही हैं, जो सखियोंकी गुरुरूप हैं, तुम्हारी उन प्यारी सखी श्रीललिताको मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

सौदामिनीनिचयचारुरुचिप्रतीकां तारावलीललितकान्तिमनोज्ञचेलाम्।
श्रीराधिके तव चरित्रगुणानुरूपां सद्गन्धचन्दनरतां विषये विशाखाम्॥

श्रीराधिके! मानो सौदामिनी-समूह एकत्र हो, इस प्रकार तो जिनके अंगोंका सुन्दर वर्ण है, तारिकाश्रेणीकी सुन्दर कान्ति जिनकी मनोहर साड़ीमें भरी हुई है, सुगन्धित द्रव्य, चन्दन आदिसे जो तुम्हारे लिये अंगराग प्रस्तुत करती हैं, उनसे तुम्हारा अंगविलेपन करती हैं तथा चरित्रमें, गुणमें जो तुम्हारे समान हैं, तुम्हारी उन विशाखा [सखी]-का मैं आश्रय ग्रहण कर रहा हूँ।

काश्मीरकान्तिकमनीयकलेवराभां सुस्निग्धकाचनिचयप्रभचारुचेलाम्।
श्रीराधिके तव मनोरथवस्त्रदाने चित्रां विचित्रहृदयां सदयां प्रपद्ये॥

श्रीराधिके! केशरकी कान्ति-जैसी जिनके कमनीय अंगोंकी शोभा है, सुचिक्कण काँचसमूहकी प्रभावाली सुन्दर साड़ी धारण किये रहती हैं, तुम्हारी रुचिके अनुसार तुम्हें वस्त्र पहनानेमें जो लगी हुई हैं, जिनके हृदयमें अनेकों विचित्र भाव भरे हैं! जो करुणासे भरी हैं, तुम्हारी उन चित्रा [सखी]-की मैं शरण ले रहा हूँ।

नृत्योत्सवां हि हरितालसमुज्ज्वलाभां सद्दाडिमीकुसुमकान्तिमनोज्ञचेलाम्।
वन्दे मुदा रुचिविनिर्जितचन्द्ररेखां श्रीराधिके तव सखीमहमिन्दुलेखाम्॥

श्रीराधिके! जिनके अंगोंकी आभा समुज्ज्वल हरिताल-जैसी है, जो दाडिम-पुष्पोंकी कान्तिवाली सुन्दर साड़ीमें विभूषित हैं, जिनका मुख अत्यन्त प्रसन्न है, प्रसन्नमुखकी कान्तिसे जो चन्द्रकलाको भी जीत ले रही हैं, जो नृत्योत्सवके द्वारा तुम्हें सुखी करती हैं, तुम्हारी उन इन्दुलेखा सखीकी मैं वन्दना करता हूँ।

सद्रत्नचामरकरां वरचम्पकाभां चाषाख्यपक्षिरुचिरच्छविचारुचेलाम्।
सर्वान् गुणांस्तुलयितुं दधतीं विशाखां राधेऽथ चम्पकलतां भवतीं प्रपद्ये॥

श्रीराधे! जिनके अंगोंकी आभा चम्पकपुष्प-जैसी है, जो नीलकण्ठ पक्षीके रंगकी साड़ी पहनती हैं, जिनके हाथमें रत्ननिर्मित चामर है, सभी गुणोंमें जो विशाखाके समान हैं, तुम्हारी उन [सखी] चम्पकलताकी मैं शरण ले रहा हूँ।

सद्पद्मकेशरमनोहरकान्तिदेहां प्रोद्यज्जवाकुसुमदीधितिचारुचेलाम्।
प्रायेण चम्पकलताधिगुणां सुशीलां राधे भजे प्रियसखीं तव रङ्गदेवीम्॥

राधे! जिनके अंगोंकी छवि सुन्दर पद्मपरागके समान है, जिनकी सुन्दर साड़ीकी कान्ति पूर्णविकसित जवाकुसुम-जैसी है, जिनमें गुणोंकी इतनी अधिकता है कि चम्पकलतासे भी बढ़ी-चढ़ी हैं, उन अत्यन्त सुन्दर शीलवाली तुम्हारी प्यारी सखी रंगदेवीका मैं भजन करता हूँ।

सच्चन्द्रचन्दनमनोहरकुङ्कुमाभां पाण्डुच्छविप्रचुरकान्तिलसद्दुकूलाम्।
सर्वत्र कोविदतया महितां समज्ञां राधे भजे प्रियसखीं तव तुङ्गविद्याम्॥

राधे! कर्पूर-चन्दनमिश्रित कुङ्कुमके समान जिनका वर्ण है, पीतवर्ण कान्तिपूर्ण वस्त्रसे जो सुशोभित हैं, सर्वत्र जिनकी बुद्धिमत्ताका आदर होता है, उन सुयशमयी तुम्हारी प्रियसखी तुंगविद्याका मैं भजन करता हूँ।

प्रोत्तप्तशुद्धकनकच्छविचारुदेहां प्रोद्यत्प्रवालनिचयप्रभचारुचेलाम्।
सर्वानुजीवनगुणोज्ज्वलभक्तिदक्षां श्रीराधिके तव सखीं कलये सुदेवीम्॥

श्रीराधिके! उत्तप्त विशुद्ध स्वर्ण-जैसी सुन्दर जिनकी देह है, चमकते हुए मूँगेके रंगकी जो साड़ी धारण करती हैं, तुम्हें जल पिलानेकी सुन्दर सेवामें जो निपुण हैं, तुम्हारी उन सुदेवी सखीका मैं ध्यान कर रहा हूँ।

श्रीकृष्णके व्रजसखा

व्रजभूमि प्रेमका दिव्य धाम है। वहाँ निवास करनेवाले सभी लोग अपने पूर्वजन्ममें अनेक प्रकारके जप-तप, भजन-ध्यान करके परमात्माके समीप रहनेका अधिकार प्राप्त कर चुके थे। इसीलिये उन लोगोंने व्रजकी प्रेम-भूमिमें परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णको सुहृद्‌के रूपमें प्राप्त किया। व्रजके गोप, गोपियाँ, गोपकुमार, गायें, वनके पशु-पक्षी—सभी प्रेमके मूर्तिमान् विग्रह हैं। व्रजके गोपकुमार तो सख्यभक्तिके अनुपम उदाहरण हैं। सुबल, सुभद्र, भद्र, मणिभद्र, वरूथप, तोककृष्ण, श्रीदामा आदि सहस्रों व्रजसखाओंके श्रीकृष्ण ही जीवन थे। उनके श्रीकृष्ण ही प्राण तथा सर्वस्व थे। वे सभी श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये उनके साथ दौड़ते, कूदते, गाते, नाचते और भाँति-भाँतिकी क्रीड़ाएँ करते थे। श्याम गाते तो वे तालियाँ बजाते, कन्हैया नाचते तो वे प्रशंसा करते। श्रीकृष्णकी नजरोंसे दूर होते ही उनके प्राण तड़पने लगते थे। श्रीकृष्णका वे विभिन्न वनपुष्पोंसे शृंगार करते। श्रीकृष्ण थक जाते तो वे उनके चरण दबाते। व्रजसखाओंका खेलना, झगड़ना तथा रूठना—सब कुछ मोहनकी प्रसन्नताके लिये ही होता था। श्रीकृष्णके चेहरेपर क्षोभकी हलकी-सी छाया गोपबालकोंसे सहन नहीं होती थी।

भगवान् श्रीकृष्ण दूसरोंके लिये चाहे कितने भी ऐश्वर्यशाली रहे हों, किंतु अपने इन बालसखाओंके लिये सदैव प्राणप्रिय, स्नेहमय सखा ही रहे। सखाओंका मान रखना, उनकी हर तरहसे सुरक्षा करना श्रीकृष्णका सदाका व्रत रहा है। बहुत दिनोंतक कष्ट उठाकर जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरणको वशमें कर लिया है, उन योगियोंके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णकी चरणरज मिलना दुर्लभ है। वही भगवान् अपने व्रजसखाओंके साथ नित्य क्रीड़ा करते थे। एक दिन अघासुर नामक महान् दैत्य कंसके भेजनेपर व्रजभूमिमें आया। उससे श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंकी सुखमयी क्रीड़ाएँ देखी न गयीं। अघासुर पूतना और वकासुरका छोटा भाई था। वह श्रीकृष्ण, श्रीदामा आदि ग्वाल-बालोंको देखकर मन-ही-मन सोचने लगा कि 'यही मेरे सगे भाई-बहनको मारनेवाला है, आज मैं इसको इसके सखाओंके साथ यमलोक पहुँचा दूँगा।' ऐसा निश्चय करके वह दुष्ट दैत्य अजगरका रूप धारण करके मार्गमें लेट गया। उसका अजगर-शरीर एक योजन लम्बे पर्वतके समान विशाल और मोटा था। उसने गुफाके समान अपना मुँह फाड़ रखा था। भगवान् श्रीकृष्णके बालसखा अघासुरको वृन्दावनका कोई कौतुक समझकर उसके मुखमें घुस गये। भगवान् श्रीकृष्ण सबको अभय देनेवाले हैं। जब उन्होंने देखा कि मेरे प्यारे सखा—जिनका एकमात्र रक्षक मैं हूँ, मृत्युरूप अघासुरके मुखमें प्रवेश कर गये, तब भगवान् भी उस दैत्यके मुखमें चले गये। भगवान् श्रीकृष्णने अघासुरके पेटमें अपने शरीरको इतना बढ़ाया कि वह दुष्ट दैत्य स्वयं मृत्युका ग्रास बन गया और अपने सखाओंके साथ भगवान् सहज ही बाहर निकल आये। इसी प्रकार व्योमासुर जब गोपबालक बनकर भगवान् श्रीकृष्णके बालसखाओंको गुफामें बन्द करने लगा, तब उन्होंने घूँसों और थप्पड़ोंसे उसका अन्त कर दिया। श्यामसुन्दरने अपने इन सखाओंके लिये दावाग्निपान किया। कालियनागके विषसे दूषित यमुना-जलको शुद्ध करनेके लिये उन्होंने महानागके गर्वको चूर करके उसे वहाँसे अन्यत्र भेजा। भगवान् श्रीकृष्ण लोकदृष्टिमें मथुरा भले ही चले गये, किंतु अपने गोपसखाओंके लिये तो उन्होंने वृन्दावनका कभी त्याग ही नहीं किया। शास्त्र कहता है—**'वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति।'**

श्रीकृष्णके षोडश सखा

रक्तक पत्रक और पत्रि सबही मन भावैं।
मधुकंठौ मधुबर्त रसाल बिसाल सुहावैं॥
प्रेमकंद मकरंद सदा-आनँद चंद्रहासा।
पयद बकुल रसदान सारदा बुद्धिप्रकासा॥
सेवा समय बिचारि कै चारु चतुर चित की लहैं।
ब्रजराज सुवन सँग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं॥ २३॥

रक्तक, पत्रक और पत्री—ये सबके मनको प्रिय लगते हैं। मधुकण्ठ, मधुवर्त, रसाल, विशाल, प्रेमकन्द, मकरन्द, सदानन्द, चन्द्रहास, पयद, बकुल, रसदान, शारदा और बुद्धिप्रकाश—ये सुन्दर, सुशील एवं परम चतुर सखागण भगवान्की इच्छाके अनुसार जिस सेवाका जो समय है एवं जब जो सेवा उचित है, उसको विचारकर करते हैं। ये उनके प्यारे सोलह सखा हैं। ब्रजमण्डलके राजा नन्दजीके पुत्र श्रीकृष्णके साथ घरमें तथा वनमें उनके ये सोलह सखा सेवामें सदा तत्पर रहते हैं। मैं इनकी चरण-रजका अर्थी हूँ॥ २३॥

श्रीकृष्ण-सखाओंकी सेवा

रक्तक आदिका सखारूपमें संग रहकर सेवा करना तो प्रसिद्ध ही है। वनमें ये अन्य रूपोंसे भी प्यारे श्यामसुन्दरकी सेवा करते हैं। जैसे रक्तक लाल चन्दन, कुंकुम, केशर बनकर, पत्रक तमालवृक्ष, पलाशवृक्ष बनकर, पत्रि रंग-बिरंगकी चिड़िया बनकर तथा ताल आदिके वृक्ष बनकर, मधुकण्ठ कोयल बनकर, मधुवर्त भ्रमर बनकर, रसाल आम्र-कटहल बनकर, विशाल सभी सुख एवं सुखदायक वस्तुओंका विस्तार बनकर या बड़े-बड़े शालके वृक्ष बनकर अथवा शाल-दुशाले बनकर, प्रेमकन्द कन्दविशेष बनकर, मकरन्द पुष्परस, कुन्दपुष्प बनकर, सदानन्द आनन्द प्रकाश वस्तु बनकर, चन्द्रहास चन्द्रमाकी किरण बनकर, पयद मेघ बनकर, बकुल मौलसिरीका पेड़ बनकर, रसदान रसमय पदार्थ बनकर, शारदा शांखाहुली जड़ी बनकर एवं बुद्धिप्रकाश ब्राह्मी बूटी बनकर सेवा करते हैं।

सप्तद्वीपके भक्त

जंबू और पलच्छ सालमलि बहुत राजरिषि।
कुस पबित्र पुनि क्रौंच कौन महिमा जानै लिखि॥
साक बिपुल बिस्तार प्रसिध नामी अति पुहकर।
पर्बत लोकालोक ओक टापू कंचनधर॥
हरिभृत्य बसत जे जे जहाँ तिन सों नित प्रति काज।
सप्त दीप में दास जे ते मेरे सिरताज॥ २४॥

जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप और शाल्मलिद्वीपमें बहुत-से ऋषिराज भक्त हैं। कुशद्वीप और क्रौंचद्वीप—ये अति पवित्र हैं। यहाँके भक्तोंकी महिमा कौन जान सकता है। शाकद्वीप और पुष्करद्वीप—इनका बहुत विस्तार है और इनके नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। लोकालोक पर्वत, सुवर्णमयी भूमि एवं अन्य द्वीपसमूहोंमें जो भगवान्‌के सेवक निवास करते हैं, उनसे हमारा नित्य ही प्रयोजन है। सातों द्वीपोंमें जो भगवान्‌के दास हैं, वे मेरे सिरके मुकुट हैं॥ २४॥

सप्तद्वीप और वहाँ स्थित भगवद्भक्त

श्रीप्रियव्रतके रथके पहियेसे जो लीकें बनीं, वे ही सात समुद्र हुए और उनसे एक ही भूमण्डल सप्तद्वीपोंमें विभक्त हो गया। (छ० १० में श्रीप्रियव्रतजीका प्रसंग वर्णित है) इनका वर्णन इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप—इसका विस्तार एक लाख योजन है। इसमें ग्यारह सौ योजन ऊँचा और इतने ही विस्तारवाला विशाल जामुनका वृक्ष है, अतः इस द्वीपका नाम भी जम्बूद्वीप पड़ गया। वह अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले खारे जलके समुद्रसे परिवेष्टित है। श्रीप्रियव्रतजीके पुत्र आग्नीध्रजी इसके अधिपति हुए।

प्लक्षद्वीप—इसका विस्तार दो लाख योजन है। यह खारे समुद्रको चारों ओरसे परिवेष्टित किये है। इसमें ग्यारह सौ योजन ऊँचा और इतने ही विस्तारवाला सुवर्णमय प्लक्ष (पाकर)-का वृक्ष है। इसी कारण इसका नाम प्लक्षद्वीप हुआ। यह अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। श्रीप्रियव्रतजीके पुत्र इध्मजिह्वजी इसके अधिपति हैं।

शाल्मलिद्वीप—इसका विस्तार चार लाख योजन है। यह इक्षुरसके समुद्रको चारों ओरसे परिवेष्टित

किये है। इसमें प्लक्षद्वीपके पाकरके ही समान शाल्मलि (सेमर)-का वृक्ष है। कहते हैं, यही वृक्ष अपने वेदमय पंखोंसे भगवान्‌की स्तुति करनेवाले पक्षिराज गरुड़जीका निवास-स्थान है तथा यही इस द्वीपके नामकरणका भी हेतु है। यह अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले मदिराके सागरसे घिरा है। श्रीप्रियव्रतपुत्र यज्ञबाहु इसके अधिपति हैं।

कुशद्वीप—मदिराके समुद्रसे आगे, उसको चारों ओरसे घेरे हुए आठ लाख योजन विस्तारवाला कुशद्वीप है, पूर्वोक्त द्वीपोंके समान यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें भगवान्‌का रचा हुआ एक कुशोंका झाड़ है। उसीसे इस द्वीपका नाम कुशद्वीप हुआ। श्रीप्रियव्रतपुत्र महाराज हिरण्यरेता इसके अधिपति हैं।

क्रौञ्चद्वीप—घृतसमुद्रके आगे उसके चारों ओर उससे द्विगुण परिमाणवाला अर्थात् सोलह लाख योजन विस्तारवाला क्रौंचद्वीप है। यह अपने समान परिमाणवाले दूधके समुद्रसे घिरा हुआ है। यहाँ क्रौंचनामका बहुत बड़ा पर्वत है। उसीके कारण इसका नाम क्रौंचद्वीप हुआ है। श्रीप्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ इसके अधिपति हैं।

शाकद्वीप—क्षीरसमुद्रके आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप है, जो अपने ही समान परिमाणवाले मट्ठेके समुद्रसे घिरा है। इसमें शाक नामका एक बहुत बड़ा वृक्ष है। उसकी मनोहर सुगन्धसे पूरा शाकद्वीप महकता रहता है। इसीसे इस द्वीपको शाकद्वीप कहते हैं। श्रीप्रियव्रतपुत्र मेधातिथिजी इसके अधिपति हैं।

पुष्करद्वीप—मट्ठेके समुद्रसे आगे उसके चारों ओर उससे दुगने विस्तारवाला पुष्कर द्वीप है, जो अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। वहाँ अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान लाखों स्वर्णमय पंखुड़ियोंवाला एक बहुत बड़ा पुष्कर (कमल) है, जो ब्रह्माजीका आसन माना जाता है। इसीसे इस द्वीपका नाम पुष्करद्वीप पड़ा। श्रीप्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र इसके अधिपति हैं।

लोकालोक पर्वत—मीठे जलके समुद्रसे आगे नौ करोड़ छियानबे लाख पचास हजार योजनके बाद लोकालोक पर्वत है। यह सूर्य आदिसे प्रकाशित एवं अप्रकाशित भूभागोंके बीचमें है। इससे इसका नाम लोकालोक पर्वत पड़ा, इसे परमात्माने त्रिलोकीके बाहर उसके चारों ओर सीमाके रूपमें स्थापित किया है। यह इतना ऊँचा और लम्बा है कि इसके एक ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाली सूर्यसे लेकर ध्रुवपर्यन्त समस्त ज्योतिर्मण्डलकी किरणें दूसरी ओर नहीं जा सकती हैं। यह साढ़े बारह करोड़ योजन विस्तारवाला है।

कंचनधर टापू—मीठे जलके समुद्रसे आगे एक करोड़, सत्तावन लाख, पचास हजार योजन भूमिके उपरान्त कांचनी भूमि है, जो दर्पणके समान स्वच्छ है। यहाँ देवकोटिके लोग रहते हैं। इसका विस्तार आठ करोड़ उनतालीस लाख योजन है।

जम्बूद्वीपके भक्त

इलाबर्त अधिईस सँकर्षन अनुग सदासिव।
रमनक मछ मनु दास हिरन्य कूरम अर्यम इव॥
कुरु बराह भू भृत्य बर्ष हरि सिंह प्रहलादा।
किंपुरुष राम कपि भरत नरायन बीना नादा॥

भद्रासु ग्रीवहय भद्रस्त्रव केतु काम कमला अनूप।
मध्य दीप नव खंड में भक्त जिते मम भूप॥ २५॥

सब द्वीपोंके मध्यका जो जम्बूद्वीप है, उसके नौ खण्ड हैं। उनमें जो निवास करते हैं, वे हमारे राजा हैं, हम उनकी प्रजा हैं। इलावर्तखण्डके स्वामी भगवान् संकर्षण हैं और उनके मुख्य सेवक शंकरजी हैं। रमणकखण्डके अधीश्वर श्रीमत्स्यभगवान् हैं, उनके सेवक मनुजी हैं। हिरण्यखण्डमें भगवान् श्रीकूर्मजी आराध्य हैं और अर्यमा उनके पुजारी हैं। कुरुखण्डके अधीश श्रीवराहभगवान् हैं और उनकी सेवा करनेवाली पृथ्वीदेवी हैं। हरिवर्षखण्डमें श्रीनृसिंहभगवान् विराजते हैं और उनके सेवक प्रह्लादजी हैं। किम्पुरुषखण्डके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं और उनकी सेवामें हनुमान्जी तत्पर रहते हैं। भरतखण्डमें भगवान् श्रीनरनारायण आराध्यदेव हैं, उनकी पूजा करनेवाले नारदजी हैं। भद्राश्वखण्डमें हयग्रीवभगवान् आराध्य हैं और भद्रश्रवाजी उनके पुजारी हैं। केतुमालखण्डके अधिपति भगवान् कामदेव हैं और कमलादेवी उनकी सेविका हैं॥ २५॥

जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंमें भक्तिके स्वरूपके विषयमें यहाँ कुछ विवरण प्रस्तुत है—

मध्यद्वीप नौ खण्ड

सातों द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीपके अधिपति महाराज आग्नीध्रके नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्र हुए। राजा आग्नीध्रने जम्बूद्वीपका विभाग करके नौ-नौ हजार योजन विस्तारवाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक-एक पुत्रको सौंप दिया। इन्हीं पुत्रोंके नामसे नौ वर्ष प्रसिद्ध हो गये। यथा—राजा नाभिके नामसे अजनाभवर्ष, किम्पुरुषके नामसे किम्पुरुषवर्ष इत्यादि।

अजनाभवर्षको ही भारतवर्ष कहा जाता है। आग्नीध्रनन्दन राजा नाभि एवं उनकी पत्नी मेरुदेवीके यहाँ स्वयं भगवान्ने ऋषभदेवके नामसे अवतार ग्रहण किया। ऋषभदेवजीके सौ पुत्रोंमें राजर्षि भरत सबसे बड़े, सर्वाधिक गुणवान् और महान् भगवद्भक्त थे। वे अत्यन्त प्रतापी और धर्मात्मा हुए, उन्हींके नामसे अजनाभखण्डका नाम भारतवर्ष पड़ा—'**अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति**' (श्रीमद्भा० ५।७।३) इन नवों वर्षोंमें परम पुरुष भगवान् वहाँके लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी विभिन्न मूर्तियोंसे विराजमान रहते हैं। इन समस्त वर्षोंमें भारतवर्ष श्रेष्ठ है। देवता भी भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी महिमाका गान करते हैं। यथा—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।२१)

अहा! जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्की सेवाके योग्य मनुष्य-जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्यके लिये तो हम भी निरन्तर तरसते रहते हैं। देवता यह अभिलाषा करते हैं कि अबतक स्वर्ग-सुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन और शुभ कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य बचा हो तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्की स्मृतिसे युक्त मनुष्य-शरीर मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण करते हैं। यथा—

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम्।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद् वर्षे हरिर्यद् भजतां शन्तनोति॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।२८)

इसी जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष है, यह स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करनेवालोंकी कर्मभूमि है। पृथ्वीपर

भारतवर्षके अतिरिक्त कहीं भी कर्मकी विधि नहीं है। अन्य वर्ष भोगभूमियाँ हैं। **'यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्यां भोगभूमयः'** (विष्णुपु० २।३।२२)। जन्म-जन्मान्तरके महान् पुण्योंका उदय होनेपर ही भारतवर्षमें जन्म होता है, जिसकी कीर्तिका गान करते हुए देवता भी कहते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(श्रीविष्णुपुराण २।३।२४)

अर्थात् देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं।

श्वेतद्वीपके भक्त

श्रीनारायन (को) बदन निरंतर ताही देखैं।
पलक परै जो बीच कोटि जमजातन लेखैं॥
तिन के दरसन काज गए तहँ बीनाधारी।
स्याम दई कर सैन उलटि अब नहिं अधिकारी॥
नारायन आख्यान दृढ़ तहँ प्रसंग नाहिन तथा।
स्वेतद्वीप में दास जे श्रवन सुनौ तिन की कथा॥ २६॥

श्वेतद्वीप (भगवद्धाम)-में निवास करनेवाले भगवान्के भक्तोंकी गाथा कान लगाकर सुनिये। ये श्रीनारायणभगवान्के मुखारविन्दका निरन्तर दर्शन करते रहते हैं। यदि कभी पलक पड़नेभरका भी व्यवधान हो जाय तो उसे वे करोड़ों नारकीय कष्टोंके समान मानते हैं। किसी समय नारदजी इन भक्तोंका दर्शन करनेके लिये गये। नारदजी इन्हें ज्ञानोपदेश करना चाहते थे। श्रीनारायणभगवान्ने हाथसे संकेत किया कि यहाँसे लौट जाओ; क्योंकि ये रूपमाधुरीमें आसक्तजन तुम्हारे उपदेशोंके अधिकारी नहीं हैं अर्थात् इन्हें ज्ञानचर्चा सुननेकी इच्छा नहीं है। यहाँ भगवान्की प्रेमापरा भक्तिमें ही निष्ठा है, अतः दूसरे ज्ञानप्रसंगोंकी यहाँ चर्चा ही नहीं है॥ २६॥

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भक्तजनोंकी उपासनाके सम्बन्धमें तीन कवित्तोंमें इस प्रकार कहते हैं—

श्वेतद्वीप वासी सदा रूप के उपासी गये नारद विलासी उपदेश आशा लागी है।
दई प्रभु सैन जिनि आवो इहि ऐन दृग देखैं सदा चैन मति गति अनुरागी है॥
फिरे दुःख पाइ जाइ कही श्रीबैकुण्ठनाथ साथ लिये चले लखो भक्ति अङ्ग पागी है।
देख्यो एक सर खग रह्यो ध्यान धरि ऋषि पूछैं कहो हरि कह्यो बड़ो बड़भागी है॥ १०३॥

श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भक्तजन सर्वदा भगवान्के रूपकी उपासना करते हैं। रूपमाधुरीका दर्शन ही उनका साधन और साध्य है। अपने उपदेशोंसे सभीको कृतार्थ करते हुए सर्वदा सर्वत्र विचरनेवाले कौतुकी श्रीनारदजी एक बार श्वेतद्वीपको गये। वहाँके भक्तोंको उपदेश देनेकी आशा लगी थी। भगवान्ने इशारा किया कि उपदेश देनेकी इच्छासे यहाँ मत आओ। यहाँके भक्तलोग सदा परमानन्ददायक रूपका दर्शन करते रहते हैं। उनकी बुद्धि मेरे रूपमें अत्यन्त आसक्त है। मन-ही-मन दुखी होकर नारदजी लौट आये और वैकुण्ठधाममें जाकर वैकुण्ठनाथजीसे सब बात कही। तब भगवान्ने कहा—हम तुम्हें साथ लेकर चलें और देखें कि किस प्रकार उन भक्तोंके रोम-रोममें भक्ति रम रही है? दोनों श्वेतद्वीप पहुँचे तो वहाँ देखा कि

एक सरोवरके तटपर एक पक्षी ध्यान लगाये बैठा है। नारदजीने पूछा—भगवन्! यह पक्षी इस प्रकार कैसे बैठा है? भगवान्ने कहा—यह बड़ा ही भाग्यशाली है; क्योंकि भक्तिमें पूर्णरूपसे लीन है॥ १०३॥

बरस हजार बीते भये नहीं चित चीते प्यासोई रहत ऐपै पानी नहीं पीजिये।
पावै जो प्रसाद जब जीभ सौ सवाद लेत लेत नहीं और याकी मति रस भीजिये॥
लीजै बात मानि जलपान करि डारि दियो लियो चोंच भरि दृग भरि बुधि धीजिये।
अचरज देखि चख लगै न निमेष किहूँ चहुँ दिशि फिर्‍यौ अब सेवा याकी कीजिये॥ १०४॥

इस भक्त पक्षीको इस प्रकार ध्यान करते हुए एक हजार वर्ष बीत गये हैं, परंतु अभी इसके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई है। पानीमें रहते हुए भी यह प्यासा रहता है, परंतु पानी नहीं पीता है। इसकी ऐसी निष्ठा है कि इसे प्रसाद मिले तभी जीभसे उसका स्वाद लेता है। बिना प्रसादके कभी कुछ भी ग्रहण नहीं करता है। इस प्रकार इसकी बुद्धि प्रसाद-रसमें मग्न हो गयी है। मेरी इस बातको मान लीजिये। नारदजीको प्रकट दिखानेके लिये भगवान्ने जलपानकर शेष जल उसके सामने रख दिया। तुरंत उसने चोंच भरकर पी लिया। भगवत्प्रसादके स्वादसे उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू आ गये और बुद्धि भी विभोर हो गयी। इस आश्चर्यको देखकर नारदजी टकटकी लगाकर उस भक्त पक्षीका दर्शन करने लगे। फिर उसके चारों ओर फिरकर उसकी परिक्रमा की और कहने लगे कि अब तो हम यहीं रहकर कुछ काल इसकी सेवा करेंगे॥ १०४॥

चलो आगे देखौ कोऊ रहै न परेखौ भाव भक्ति करि लेखौ गए द्वीप हरि गाइये।
आयो एक जन धाय आरती समय विहाय खैंचि लिये प्राण फिरि बधू याकी आइये॥
वही इन कही, पति देख्यो नहीं मही पर्‍यो हर्‍यो याको जीव तन गिर्‍यो मन भाइये।
ऐसे पुत्र आदि आये सांचे हित में दिखाए फेरिकै जिवाये ऋषि गाये चित लाइये॥ १०५॥

भगवान्ने कहा—अभी और आगे चलो, यहाँके भक्तोंकी भक्तिका विचित्र भाव देखो और फिर उसपर विचार करो। श्रीवैकुण्ठनाथ और नारदजी श्वेतद्वीपमें और आगे गये। वहाँ एक मन्दिरमें भगवान्के नाम और लीलाओंका गान हो रहा था। मन्दिरमें आरती हुई। थोड़ी देरबाद एक भक्त दौड़कर आये, जब उन्हें यह मालूम हुआ कि आरती हो गयी, मन्दिर बन्द हो गया, हम दर्शनोंसे वंचित रह गये। इस पश्चात्तापसे उसके प्राण खिंच गये, वह निर्जीव होकर गिर पड़ा। पीछेसे उसकी स्त्री भी आयी और इसने भी वही पूछा कि क्या आरती हो गयी? तो उन लोगोंने फिर भी वही बात कही, जो उसके पतिसे कही थी कि हाँ, आरती हो गयी। तुम्हारा पति भी आरतीका दर्शन नहीं कर सका। देखती नहीं हो, वह निर्जीव होकर पृथ्वीपर पड़ा है। फिर तो आरती-अदर्शनजन्य दुःखने इसके भी प्राणोंको हर लिया। इसका भी शरीर निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसी प्रकार उसके पुत्र आदि भी आये। दर्शनोंके वियोगमें वे भी सभी निष्प्राण हो गये। रूपमाधुरी देखे बिना उनके मनको मरण ही अच्छा लगा, जीवन प्रिय नहीं लगा। उनका दर्शनोंका यह प्रेम नारदजीको अति प्रिय लगा। वे सभी भगवत्प्रेममें सच्चे दिखलायी पड़े। भगवान्ने नारदजीको सच्चे प्रेमका दर्शन कराया। कुछ समय बाद जब पुनः आरती होने लगी, तब सभी भगवत्कृपासे जीवित होकर दर्शनानन्दमें विभोर हो गये। व्यास आदि ऋषियोंने इन चरित्रोंका गान किया है, इनका चिन्तन कीजिये॥ १०५॥

श्वेतद्वीपनिवासियोंकी भगवद्भक्ति

श्वेतद्वीप भगवान् नारायणका अनिर्वचनीय धाम है, जो क्षीरसागरके उत्तर भागमें विशाल द्वीपके रूपमें स्थित है। इसकी ऊँचाई मेरुपर्वतसे बत्तीस हजार योजन है। वहाँके निवासी इन्द्रियोंसे रहित, निराहार तथा

ज्ञानसम्पन्न होते हैं; उनके अंगोंसे उत्तम सुगन्ध निकलती रहती है। उस द्वीपमें सब प्रकारके पापोंसे रहित श्वेत वर्णवाले पुरुष निवास करते हैं। उनकी ओर देखनेसे पापी मनुष्योंकी आँखें चौंधिया जाती हैं। उनके शरीर तथा हड्डियाँ वज्रके समान सुदृढ़ होती हैं। वे मान-अपमानको समान समझते हैं। उनके अंग दिव्य होते हैं। वे शुभ (योगके प्रभावसे उत्पन्न) बलसे सम्पन्न होते हैं। उनके मस्तकका आकार छत्रके समान और स्वर मेघोंकी घटाके गर्जनके समान गम्भीर होता है। उनके बराबर-बराबर चार भुजाएँ होती हैं। उनके पैर सैकड़ों कमलसदृश रेखाओंसे सुशोभित होते हैं। उनके मुँहमें साठ सफेद दाँत और आठ दाढ़ें होती हैं। वे सूर्यके समान कान्तिमान् तथा सम्पूर्ण विश्वको अपने मुखमें रखनेवाले महाकालको भी अपनी जिह्वाओंसे चाट लेते हैं। जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, सारे लोक प्रकट हुए हैं; वेद, धर्म, शान्त स्वभाववाले मुनि तथा सम्पूर्ण देवता जिनकी सृष्टि हैं, उन अनन्त शक्तिसम्पन्न परमेश्वरको श्वेतद्वीपके निवासी भक्ति-भावसे अपने हृदयमें धारण करते हैं। चन्द्रमाके समान गौरवर्ण और सब प्रकारके उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न वहाँके निवासी प्रतिदिन ईशान कोणकी ओर मुँह करके हाथ जोड़े हुए उन परब्रह्म परमात्माका मानस जप करते हैं। उनके मनकी एकाग्रतासे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। प्रलयकालमें सूर्यकी जैसी प्रभा होती है, वैसी ही उस द्वीपमें रहनेवाले प्रत्येक पुरुषकी होती है। इस प्रकार वह द्वीप तेजका निवास-स्थान ही है। भगवान् श्रीहरि भी वहाँके निवासियोंको तेज:पुंजके रूपमें ही दर्शन देते हैं। उस समय उनकी प्रभा हजारों सूर्योंके समान होती है। उस समय वहाँके निवासी दोनों हाथ जोड़कर **'नमो नमः'** कहते हुए उनकी ओर तेज गतिसे दौड़ते हैं और विभिन्न प्रकारके उपचारोंसे उनका पूजन करते हैं; तत्पश्चात् उनकी इस प्रकार स्तुति करते हैं—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज॥

तदनन्तर वहाँ पवित्र और सुगन्धित वायु बहुत-से दिव्य पुष्प एवं कार्योपयोगी औषधियोंको लेकर आती है, जिनसे वहाँके पंचकालवेत्ता अनन्य भक्त मनसा, वाचा, कर्मणा उन तेजोरूप भगवान् श्रीहरिका पूजन करते हैं।

अष्टनाग

इलापत्र मुख अनँत अनँत कीरति बिसतारत।
पद्म संकु पन प्रगट ध्यान उर ते नहिं टारत॥
अँसु कंबल बासुकी अजित आग्या अनुबरती।
करकोटक तच्छक सुभट्ट सेवा सिर धरती॥
आगमोक्त सिवसंहिता अगर एकरस भजन रति।
उरग अष्टकुल द्वारपति सावधान हरिधाम थिति॥ २७॥

भक्त सर्पोंके आठ वंश हैं। ये भगवान्‌के द्वारपाल हैं। प्रभुकी सेवामें सदा सावधान रहते हैं। भगवान्‌के धाममें इनकी स्थिति है। इलापत्रजी और अनन्त मुखवाले शेषजी अनन्तभगवान्‌की कीर्तिका विस्तार करते रहते हैं। पद्म और शंकु—इनका प्रण प्रसिद्ध है। ये हृदयसे भगवान्‌के रूपका ध्यान कभी नहीं टालते हैं। अंशुकम्बल और वासुकि—ये भगवान्‌के आज्ञाकारी हैं। कर्कोटक और तक्षक—ये बड़े वीर हैं, सेवारूपी भूमिको सदा अपने सिरपर धारण करते हैं। शिवसंहिता नामक आगममें इनका वर्णन है। श्रीअग्रदासजीका कथन है कि इन भक्त सर्पोंकी भजनमें सदा एकरस प्रीति रहती है॥ २७॥

यहाँ अष्ट नागकुलके नागोंकी भक्ति संक्षेपमें दी जा रही है—

पुराणोंमें नागोंके आठ कुल प्रसिद्ध हैं; ये हैं—अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल और कुलिक। ये प्रजापति कश्यप और नागमाता कद्रूकी संतान हैं। ये आठ नाग क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं। पद्म, उत्पल, स्वस्तिक, त्रिशूल, महापद्म, शूल, क्षत्र और अर्धचन्द्र—ये क्रमशः इन आठ नागोंके आयुध हैं। अनन्त और कुलिक—ये दोनों ब्राह्मण नाग-जातियाँ हैं, शंखपाल और वासुकि क्षत्रिय, महापद्म और तक्षक वैश्य तथा पद्म और कर्कोटक शूद्र नाग हैं। अनन्त और कुलिक नाग शुक्लवर्ण तथा ब्रह्माजीसे उत्पन्न हैं, वासुकि और शंखपाल रक्तवर्ण तथा अग्निसे उत्पन्न हैं, तक्षक और महापद्म स्वल्प पीतवर्ण तथा इन्द्रसे उत्पन्न हैं, पद्म और कर्कोटक कृष्णवर्ण तथा यमराजसे उत्पन्न हैं।

भगवान् अनन्तका ही एक नाम 'शेष' भी है। भगवान् श्रीहरि उन्हीं शेषको शय्या बनाकर क्षीरसागरमें शयन करते हैं। वे शेषजी अपने एक हजार मुखों और दो हजार जिह्वाओंसे सदा भगवान् श्रीहरिका नामजप करते रहते हैं। उन सर्वाधार प्रभुका आधार बननेका परम सौभाग्य प्राप्त है शेषजीको। वस्तुतः शेषजी भगवान् श्रीहरिकी ही विभूति हैं; जिस समय ब्रह्माजीकी आयु—दो परार्ध बीत जाती है, उस समय कालशक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूत अहंकारमें, अहंकार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है—उस समय भगवान् श्रीहरि ही एकमात्र शेष रह जाते हैं, इसीसे उनका एक नाम 'शेष' भी है—

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः॥

भगवान् शेष सेवाभक्तिके आदर्श उदाहरण हैं। उन्होंने स्वयंको अपने प्रभुका सेवोपकरण बना दिया है। वे ही प्रभुकी शय्या हैं, वे ही प्रभुके छत्र हैं और वे ही उनके सिंहासन। प्रभु जब लीलावतार लेते हैं, तो वे भी उनकी सेवाके लिये आ जाते हैं। श्रीरामावतारमें उन्होंने अनुज लक्ष्मण बनकर सेवाका आदर्श दिखाया तो श्रीकृष्णावतारमें अग्रज संकर्षण बलरामके रूपमें उनके संरक्षणका भार वहन करनेकी लीला की। वे ही पाताललोकमें नागराज शेषनागके रूपमें कर्कोटक, तक्षक आदि नागोंसे घिरे बैठे हुए मन-वचन-शरीरके कर्मोंद्वारा भगवान् वासुदेवका जप करते रहते हैं—

वृतं कर्कोटकाद्यैस्तैः शेषं तक्षकपन्नगैः। जपन्तं वासुदेवेति वाङ्मनःकायकर्मभिः॥

(जैमिनीयाश्वमेधपर्व ३८।१८९)

चतुःसम्प्रदायाचार्य[१]

(श्री) रामानुज[२] ऊदार सुधानिधि अवनि कल्पतरु।
बिष्नुस्वामि बोहित्थ सिंधु संसार पार करु॥
मध्वाचारज मेघ भक्ति सर ऊसर भरिया।
निम्बादित्य अदित्य कुहर अग्यान जु हरिया॥
जनम करम भागवत धरम संप्रदाय थापी अघट।
चौबीस प्रथम हरि बपु धरे (त्यों) चतुर्ब्यूह कलिजुग प्रगट॥ २८॥

१. श्रीनाभादासजीने छप्पय २७ तक सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर युगके भक्तोंका वर्णन करनेके अनन्तर २८वें छप्पयसे कलियुगके भक्तोंके पावन चरित्रोंका विवेचन प्रस्तुत किया है।

२. भक्तमालकी कतिपय प्रतियोंमें 'रामानुज' की जगह 'रामानन्द' पाठ भी मिलता है, दोनों ही ठीक हैं; क्योंकि 'श्री' सम्प्रदायके सम्वर्धक दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजाचार्य, उत्तर भारतमें श्रीरामानन्दाचार्यजी हुए।

रमा पधति रामानुज बिष्नुस्वामि त्रिपुरारि।
निंबादित्य सनकादिका मधुकर गुरु मुखचारि॥ २९॥

जिस प्रकार पहले तीन युगोंमें भगवान्‌ने चौबीस अवतार धारण किये, उसी प्रकार कलियुगमें आचार्योंका चतुर्व्यूह प्रकट हुआ। जैसे—श्रीसम्प्रदायके सम्वर्धक दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजाचार्य, उत्तर भारतमें श्रीरामानन्दाचार्यजी हुए। ये महान् उदार थे, शरणागतोंको अपनानेमें इनका दृष्टिकोण संकुचित न था। ये प्रेमामृत और ज्ञानामृतके अगाध समुद्र थे और इस पृथ्वीपर भक्तोंकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये साक्षात् कल्पवृक्ष थे। रुद्रसम्प्रदायके सम्वर्धक आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी भवसागरमें डूबते हुए जीवोंको पार करनेके लिये जहाज थे। ब्रह्मसम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीमध्वाचार्यजी सरोवर (सरस) और ऊसर (नीरस) हृदयवाले लोगोंके हृदयोंको भक्तिसे परिपूर्ण करनेके लिये भक्तिकी वर्षा करनेवाले मेघ थे। सनकादिक सम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीनिम्बार्काचार्यजी अज्ञानरूपी कुहरको नष्ट करनेवाले और ज्ञानभक्तिका प्रकाश करनेवाले सूर्य थे। इन्होंने जन्म लेकर और सत्कर्मोंका स्वयं आचरण करके वैष्णवधर्मके सम्प्रदायोंकी सर्वथा अक्षय एवं सुदृढ़ स्थापना की॥ २८॥

श्रीसम्प्रदायके श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीरामानन्दाचार्य, रुद्रसम्प्रदायके आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी, सनकादिक सम्प्रदायके श्रीनिम्बार्काचार्य और ब्रह्म-सम्प्रदायके श्रीमध्वाचार्यजी सम्वर्धक तथा संस्थापक हुए॥ २९॥

यहाँ इन आचार्योंके विषयमें संक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है—

श्रीरामानुजाचार्यजी

श्रीरामानुजाचार्यजी श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य हैं। भगवती महालक्ष्मी इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका हैं। श्रीरामानुजाचार्यजीका चरित्र छप्पय ३१ में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य हैं। कबीर, सेन, धन्ना, रैदास आदि इनके द्वादश प्रधान शिष्य हैं। छप्पय ३६ में इनसे सम्बन्धित विवरण दिया गया है।

आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी

धर्मराज युधिष्ठिरके संवत् २५०० व्यतीत होनेपर अर्थात् विक्रमसे ६०० वर्षपूर्व द्रविडदेशके एक क्षत्रिय राजाके मन्त्री भक्त ब्राह्मणने भगवान्‌की बड़ी आराधना करके विष्णुस्वामीको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया था। कोई-कोई इनका समय विक्रमके बाद भी मानते हैं। भगवद्विभूतिस्वरूप होनेके कारण बचपनमें ही इनमें अलौकिक गुण प्रकट हुए थे। इनकी जैसी अद्भुत प्रतिभा थी, वैसा ही सुन्दर शरीर भी था। यज्ञोपवीत-संस्कारके अनन्तर थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने सम्पूर्ण वेद-वेदांग, पुराणादिका यथावत् ज्ञान प्राप्त कर लिया। **'यो यदंशः स तं भजेत्'** के नियमानुसार अब ये परम सुखके अन्वेषणकी ओर अग्रसर हुए। इन्होंने मर्त्यलोकसे लेकर ब्रह्मलोकतकपर विचार किया, परंतु इन्हें इनके अभीष्ट वस्तुके दर्शन नहीं हुए। इनकी उपासना बहुत दिनोंतक बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ एक-सी चलती रही; परंतु अभिलाषा पूर्ण न हुई।

अब इन्होंने भगवद्वियोगमें अन्न-जलका त्याग कर दिया, परंतु भगवत्सेवा पूर्ववत् चलती रही। छः दिन बीत गये, शरीर शिथिल पड़ गया, परंतु उत्साहमें न्यूनता नहीं आयी। सातवें दिन इनकी विरह-व्यथा इतनी तीव्र हो गयी कि इन्हें एक-एक क्षण कल्पके समान जान पड़ने लगा, जीना भारस्वरूप हो गया। तब इन्होंने अपने शरीरको विरहाग्निमें जला देनेका निश्चय किया। इसी समय इनका हृदय प्रकाशसे भर

गया और भगवत्प्रेरणासे आँखें खुलनेपर इन्होंने भगवान् श्यामसुन्दरका सुर-मुनिदुर्लभ दर्शन प्राप्त किया। उस समय इनकी जो दशा हुई, वह सर्वथा अवर्णनीय है। आनन्दपूर्ण हृदयसे इन्होंने भगवान्‌के चरणकमलोंपर सिर रख दिया एवं पुलकित शरीरसे अश्रुधारा बहाते हुए वहीं लोटने लगे। भगवान्‌ने इन्हें निज करकमलोंसे उठाकर हृदयसे लगाया एवं इनके सिर तथा पीठपर हाथ फेरकर कृतार्थ किया। थोड़ी देर बाद सँभलकर अंजलि बाँधकर इन्होंने भगवान्‌की स्तुति की। इनके मनमें उपनिषदोंके अभिप्रायके सम्बन्धमें कुछ सन्देह था, अतः उसका निवारण करनेके लिये भगवान्‌ने इन्हें अपने गुह्यतम तत्त्वका रहस्य बताया। भगवान्‌ने कहा—'अपने मनमें इस सन्देहको तो स्थान ही मत दो कि मुझ पुरुषोत्तम भगवान्‌के, जो तुम्हारे सामने साकाररूपसे, साक्षात् प्रत्यक्ष होकर बात कर रहा हूँ, अतिरिक्त भी कोई दूसरा तत्त्व है। इसी साकाररूपसे एक, अद्वितीय, त्रिविधभेदशून्य अनिर्वचनीय परम तत्त्व मैं हूँ। माया, जगत् आदि कुछ नहीं, सब मैं ही हूँ। जितने विरुद्ध धर्म दीखते हैं, सब मुझमें हैं। मैं ही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, सविशेष-निर्विशेष—सब कुछ हूँ। अतः यह शंका छोड़कर सर्वभावसे मेरा ही भजन करो।'

इसके पश्चात् विष्णुस्वामीसे भगवान्‌की बहुत देरतक बातचीत होती रही। इन्होंने आग्रह किया कि 'अब आप अन्तर्धान न हों, सर्वदा मुझे दर्शन दिया करें या अपने साथ ले चलें।' भगवान्‌को तो इनसे भक्तिका प्रचार कराना था। अतः एक मूर्ति बनानेवालेको बुलाकर दर्शन दिया और वैसी ही मूर्ति बनाकर स्थापित करके अर्चा-सेवा करनेका आदेश दिया और स्वयं उसमें प्रवेश कर गये। विष्णुस्वामी उस विग्रहको साक्षात् भगवद्रूप मानकर अर्चा-पूजा करते हुए आनन्दसे जीवन बिताने लगे। ये **'श्रीकृष्ण तवास्मि'** इस मन्त्रका जप करते थे।

भगवद्दर्शन और भगवदादेशके बाद विष्णुस्वामी भक्तिके प्रचार-प्रसारमें संलग्न हो गये। एक बारकी बात है, अपने बहुत-से शिष्योंको साथ लेकर आप भक्तिका प्रचार करते हुए भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करने उनके धाम श्रीजगन्नाथपुरी आये। उस समय महाप्रभु जगन्नाथस्वामीका फूल-डोल महोत्सव चल रहा था, भक्त दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ लगी थी। आप गरुडस्तम्भके पास खड़े होकर प्रभुकी मनोरम झाँकीके दर्शन करने लगे, परंतु दर्शनार्थियोंके बढ़ते जन-सैलाबमें आपको वहाँ खड़े रह पाना सम्भव न लगा तो मन्दिरके द्वारसे हटकर आप उसके पृष्ठभागमें चले गये और वहाँ बैठकर प्रभुकी उसी मनोरम झाँकीका ध्यान करने लगे, जिसका उन्हें गरुडस्तम्भके पाससे दर्शन हुआ था।

जितनी उत्सुकता भक्तको भगवान्‌का दर्शन करनेकी होती है, उतनी ही उत्सुकता भगवान्‌को भी अपने भक्तके दर्शनकी होती है; वे तो अपने भक्तोंके पीछे-पीछे उनकी पादरेणुके लिये दौड़ते हैं। भक्त विष्णुस्वामीका मुख्य द्वारसे हटकर मन्दिरके पीछेकी ओर बैठना भगवान् जगन्नाथजीके लिये असह्य हो गया और उन्होंने उनके लिये मन्दिरके पृष्ठभागमें भी द्वार बनाकर अपना दर्शन सुलभ कर दिया। भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका दर्शनकर विष्णुस्वामी भावविभोर हो गये, उनका भक्त हृदय भगवत्प्रेमसे गद्‌गद हो उठा। उधर दर्शनार्थियोंको जब यह ज्ञात हुआ कि मन्दिरके पृष्ठभागमें भी एक द्वार खुला है और उससे भी भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं, तो वहाँ भी सहस्रोंकी संख्यामें जनसमुदाय पहुँच गया। अब विष्णुस्वामी इधर भी अत्यन्त भीड़-भाड़ देख कुछ तो एकान्त दर्शनहेतु और कुछ भक्तोंपर कृपा करनेके उद्देश्यसे मन्दिरके दक्षिणकी ओर जाकर बैठ गये और वहीं अपने महाप्रभुका ध्यान करने लगे, फिर क्या था? मन्दिरके दक्षिण भागमें भी एक द्वार प्रकट हो गया! और विष्णुस्वामी वहाँसे प्रभुके दर्शन करने लगे। उधर मन्दिरके दक्षिणद्वारसे भी दर्शन होनेकी सूचना जब दर्शनार्थियोंमें पहुँची तो उधर भी सहस्र-सहस्र जनसमुदाय भगवान् जगन्नाथके दर्शन करने पहुँच गया। अब विष्णुस्वामीजी उठकर मन्दिरके

उत्तर भागकी ओर चले गये तो उधर भी द्वार प्रकट हो गया, इन आश्चर्यमयी घटनाओंको देख लोगोंका ध्यान विष्णुस्वामीजीकी ओर गया और उन्हें यह विश्वास हो गया कि ये उच्च श्रेणीके सिद्ध सन्त महापुरुष हैं तथा इन्हींके लिये स्वयं भगवान्ने ही अपने मन्दिरमें चारों ओर द्वार प्रकट कर दिये हैं। तब वहाँका असंख्य जनसमुदाय इनके प्रति श्रद्धावनत हो उठा और उन्होंने भी उन सबको प्रभुकी भक्तिका उपदेश दे कृतकृत्य कर दिया।

भगवत्प्रेरणासे भक्तिकी संवर्द्धना करते-करते इनकी वृद्धावस्था आ गयी, तब इन्होंने शास्त्रमर्यादाके रक्षणके लिये त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया और भगवच्चिन्तन करते-करते ये भगवान्की नित्यलीलामें प्रवेश कर गये।

शुद्धाद्वैतसिद्धान्तके मूल प्रवर्तकाचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी हैं और इस सिद्धान्तके विशेष प्रचारक तथा प्रसारक श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुजी हैं। यह भक्तिमार्ग पुष्टिमार्ग भी कहलाता है।

श्रीमध्वाचार्यजी

श्रीभगवान् नारायणकी आज्ञासे स्वयं वायुदेवने ही भक्ति-सिद्धान्तकी रक्षाके लिये मद्रास प्रान्तके मंगलूर जिलेके अन्तर्गत उडूपाक्षेत्रसे दो-तीन मील दूर वेललि ग्राममें भार्गवगोत्रीय नारायणभट्टके अंशसे तथा माता वेदवतीके गर्भसे विक्रम-संवत् १२९५ की माघ शुक्ला सप्तमीके दिन आचार्य मध्वके रूपमें अवतार ग्रहण किया था। कई लोगोंने आश्विन शुक्ला दशमीको इनका जन्मदिन माना है, परंतु वह इनके वेदान्त-साम्राज्यके अभिषेकका दिन है, जन्मका नहीं। इनके जन्मके पूर्व पुत्रप्राप्तिके लिये माता-पिताको बड़ी तपस्या करनी पड़ी थी। बचपनसे ही इनमें अलौकिक शक्ति दीखती थी। इनका मन पढ़ने-लिखनेमें नहीं लगता था; अतः यज्ञोपवीत होनेपर भी ये दौड़ने, कूदने-फाँदने, तैरने और कुश्ती लड़नेमें ही लगे रहते थे। अतः बहुत-से लोग इनके पितृदत्त नाम वासुदेवके स्थानपर इन्हें 'भीम' नामसे पुकारते थे। ये वायुदेवके अवतार थे, इसलिये यह नाम भी सार्थक ही था। परंतु इनका अवतार-उद्देश्य खेलना-कूदना तो था नहीं; अतः जब वेद-शास्त्रोंकी ओर इनकी रुचि हुई, तब थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने सम्पूर्ण विद्या अनायास ही प्राप्त कर ली। जब इन्होंने संन्यास लेनेकी इच्छा प्रकट की, तब मोहवश माता-पिताने बड़ी अड़चनें डालीं; परंतु इन्होंने उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें कई चमत्कार दिखाकर, जो अबतक एक सरोवर और वृक्षके रूपमें इनकी जन्मभूमिमें विद्यमान हैं और एक छोटे भाईके जन्मकी बात कहकर, ग्यारह वर्षकी अवस्थामें अद्वैतमतके संन्यासी अच्युतपक्षाचार्यजीसे संन्यास ग्रहण किया। यहाँपर इनका संन्यासी नाम 'पूर्णप्रज्ञ' हुआ। संन्यासके पश्चात् इन्होंने वेदान्तका अध्ययन आरम्भ किया। इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि अध्ययन करते समय ये कई बार गुरुजीको ही समझाने लगते और उनकी व्याख्याका प्रतिवाद कर देते। सारे दक्षिण देशमें इनकी विद्वत्ताकी धूम मच गयी।

एक दिन इन्होंने अपने गुरुसे गंगास्नान और दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा माँगी। ऐसे सुयोग्य शिष्यके विरहकी सम्भावनासे गुरुदेव व्याकुल हो गये। उनकी व्याकुलता देखकर अनन्तेश्वरजीने कहा कि भक्तोंके उद्धारार्थ गंगाजी स्वयं सामनेवाले सरोवरमें परसों आयँगी, अतः वे यात्रा न कर सकेंगे। सचमुच तीसरे दिन उस तालाबमें हरे पानीके स्थानपर सफेद पानी हो गया और तरंगें दीखने लगीं। अतएव आचार्यकी यात्रा नहीं हो सकी। अब भी हर बारहवें वर्ष एक बार वहाँ गंगाजीका प्रादुर्भाव होता है। वहाँ एक मन्दिर भी है।

कुछ दिनोंके बाद आचार्यने यात्रा की और स्थान-स्थानपर विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ किये। इनके शास्त्रार्थका उद्देश्य होता भगवद्भक्तिका प्रचार, वेदोंकी प्रामाणिकताका स्थापन, मायावादका खण्डन और मर्यादाका संरक्षण। एक जगह तो इन्होंने वेद, महाभारत और विष्णुसहस्रनामके क्रमशः तीन, दस और सौ अर्थ हैं—ऐसी प्रतिज्ञा करके और व्याख्या करके पण्डितमण्डलीको आश्चर्यचकित कर दिया। गीताभाष्यका निर्माण करनेके पश्चात् इन्होंने बदरीनारायणकी यात्रा की और वहाँ महर्षि वेदव्यासको अपना भाष्य दिखाया। कहते हैं

कि दुखी जनताका उद्धार करनेके लिये उपदेश, ग्रन्थनिर्माण आदिकी इन्हें आज्ञा प्राप्त हुई। बहुत-से नृपतिगण इनके शिष्य हुए, अनेक विद्वानोंने पराजित होकर इनका मत स्वीकार किया। इन्होंने अनेक प्रकारकी योगसिद्धियाँ प्राप्त की थीं और इनके जीवनमें समय-समयपर वे प्रकट भी हुईं। इन्होंने अनेक मूर्तियोंकी स्थापना की और इनके द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह आज भी विद्यमान हैं। श्रीबदरीनारायणमें व्यासजीने इन्हें शालग्रामकी तीन मूर्तियाँ भी दी थीं, जो इन्होंने सुब्रह्मण्य, उडूपि और मध्यतलमें पधरायीं।

द्वैतवादके आचार्योंमें श्रीमन्मध्वाचार्यका विशिष्ट स्थान है। आपके अनुसार समस्त पदार्थोंका मूल कारण परमात्मा हैं। उन्हींसे सारा जगत् आविर्भूत हुआ है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अनादि हैं और इन दोनोंमें भेद है। परमात्मा स्वतन्त्र हैं और जीवात्मा परतन्त्र। आपके अनुसार श्रीहरि ही सर्वोत्तम हैं, उनकी महिमा जानते हुए अपने स्त्री-सुतादि परिवारकी अपेक्षा अधिक एवं दृढ़तर स्नेह भगवान्‌पर रखना ही भक्ति है। भगवान् श्रीहरिकी इसी भक्तिका प्रचार करते हुए वे एक बार अपने सहस्रों शिष्योंके साथ पांचाल राज्यमें गये। मार्गमें शिष्यगण पीछे रह गये थे, इसीलिये आचार्यश्री एक शिलापर बैठकर विश्राम करने लगे। थोड़ी ही देरमें वे भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें मग्न हो गये और उन्हें बाह्य जगत्‌का किंचित् भी ज्ञान न रहा। उधरसे ही पांचालनरेशकी सवारी आनी थी, अतः सैनिक उन्हें वहाँसे हटाने लगे; परंतु समाधि-अवस्थामें होनेके कारण आचार्यश्रीको सैनिकोंके क्रिया-कलापोंका कोई ज्ञान ही नहीं था। इतनेमें हाथीपर सवार राजा भी वहाँ पहुँच गये। एक साधुवेशधारीको मार्गमें बैठे देखकर और सैनिकोंद्वारा हटानेपर भी न हटनेपर उन्हें अपना अपमान लगा। उन्होंने क्रोधमें आकर महावतको आज्ञा दी कि 'इस पाखण्डीको हाथीसे कुचल दो।' फिर क्या था, राजाकी सेनाके हाथी और घुड़सवार आचार्यश्रीको कुचलनेके लिये आगे बढ़े; परंतु सब-के-सब मूर्तिवत् स्तम्भित खड़े रह गये। एक पग भी आगे न बढ़ सके। यह देख पांचालनरेश हाथीसे कूदकर उनके चरणोंमें प्रणत हो गये और अपने सम्पूर्ण समाजसहित उनकी शिष्यता ग्रहण की।

एक बार किसी व्यापारीका जहाज द्वारकासे मलाबार जा रहा था। तुलुबके पास वह डूब गया। उसमें गोपीचन्दनसे ढकी हुई एक भगवान् श्रीकृष्णकी सुन्दर मूर्ति थी। मध्वाचार्यको भगवान्‌की आज्ञा प्राप्त हुई और उन्होंने मूर्तिको जलसे निकालकर उडूपिमें उसकी स्थापना की। तभीसे वह रजतपीठपुर अथवा उडूपि मध्वमतानुयायियोंका तीर्थ हो गया। एक बार एक व्यापारीके डूबते हुए जहाजको इन्होंने बचा दिया। इससे प्रभावित होकर वह अपनी आधी सम्पत्ति इन्हें देने लगा; परंतु इनके रोम-रोममें भगवान्‌का अनुराग और संसारके प्रति विरक्ति भरी हुई थी। ये भला, उसे क्यों लेने लगे। इनके जीवनमें इस प्रकारके असामान्य त्यागके बहुत-से उदाहरण हैं। कई बार लोगोंने इनका अनिष्ट करना चाहा और इनके लिखे हुए ग्रन्थ भी चुरा लिये, परंतु आचार्य इससे तनिक भी विचलित या क्षुब्ध नहीं हुए, बल्कि उनके पकड़े जानेपर उन्हें क्षमा कर दिया और उनसे बड़े प्रेमका व्यवहार किया। ये निरन्तर भगवच्चिन्तनमें संलग्न रहते थे। बाहरी काम-काज भी केवल भगवत्-सम्बन्धसे ही करते थे। इन्होंने उडूपिमें और भी आठ मन्दिर स्थापित किये, जिनमें श्रीसीताराम, द्विभुज कालियदमन, चतुर्भुज कालियदमन, विट्ठल आदि आठ मूर्तियाँ हैं। आज भी लोग उनका दर्शन करके अपने जीवनका लाभ लेते हैं। ये अपने अन्तिम समयमें सरिदन्तर नामक स्थानमें रहते थे। यहींपर उन्होंने परम धामकी यात्रा की। देहत्यागके अवसरपर पूर्वाश्रमके सोहन भट्टको—अब जिनका नाम पद्मनाभतीर्थ हो गया था—श्रीरामजीकी मूर्ति और व्यासजीकी दी हुई शालग्रामशिला देकर अपने मतके प्रचारकी आज्ञा कर गये। इनके शिष्योंके द्वारा अनेक मठ स्थापित हुए तथा इनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थोंका प्रचार होता रहा।

श्रीमदाचार्यके बनाये अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें गीताभाष्य, दशोपनिषद्भाष्य, ब्रह्मसूत्रतात्पर्यबोधक अनुव्याख्यान, ब्रह्मसूत्र-अणुभाष्य, भागवत-भारत-गीतातात्पर्यनिर्णय, श्रीकृष्णामृतमहार्णव आदि मुख्य हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी

वैष्णवोंके प्रमुख चार सम्प्रदायोंमेंसे एक सम्प्रदाय है द्वैताद्वैत या निम्बार्क-सम्प्रदाय। निश्चितरूपसे यह मत बहुत प्राचीनकालसे चला आ रहा है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने परम्पराप्राप्त इस मतको अपनी प्रतिभासे उज्ज्वल करके लोक-प्रचलित किया, इसीसे इस द्वैताद्वैत मतकी निम्बार्क-सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्धि हुई।

भक्तोंके मतसे द्वापरमें और सम्प्रदायके कुछ विद्वानोंके मतसे विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीमें श्रीनिम्बार्काचार्यजीका प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण भारतमें वैदूर्यपत्तन परम पवित्र तीर्थ है। इसे दक्षिणकाशी भी कहते हैं। यही स्थान श्रीएकनाथजीकी जन्मभूमि है। यहीं अरुणमुनिजीका अरुणाश्रम था। श्रीअरुणमुनिजीकी पत्नी जयन्तीदेवीकी गोदमें जिस दिव्य कुमारका आविर्भाव हुआ, उसका नाम पहले नियमानन्द हुआ और यही आगे श्रीनिम्बार्काचार्यजीके नामसे प्रख्यात हुए।

श्रीनिम्बार्काचार्यजीके जीवनवृत्तके विषयमें इससे अधिक ज्ञात नहीं है। वे कब गृह त्यागकर व्रजमें आये, इसका कुछ पता नहीं है। व्रजमें श्रीगिरिराज गोवर्धनके समीप ध्रुवक्षेत्रमें उनकी साधना-भूमि है। एक दिन समीपके स्थानसे एक दण्डी महात्मा आचार्यके समीप पधारे। दो शास्त्रज्ञ महापुरुष परस्पर मिले तो शास्त्रचर्चा चलनी स्वाभाविक थी। समयका दोमेंसे किसीको ध्यान नहीं रहा। सायंकालके पश्चात् आचार्यने अतिथि यतिसे प्रसाद ग्रहण करनेके लिये निवेदन किया। सूर्यास्त होनेके पश्चात् नियमतः यतिजी भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। उन्होंने असमर्थता प्रकट की। परंतु आचार्यजी नहीं चाहते थे कि उनके यहाँ आकर एक विद्वान् अतिथि उपोषित रहें। आश्रमके समीप एक नीमका वृक्ष था, सहसा उस वृक्षपरसे चारों ओर प्रकाश फैल गया। ऐसा लगा, जैसे नीमके वृक्षपर सूर्यनारायण प्रकट हो गये हैं। कोई नहीं कह सकता कि आचार्यके योगबलसे भगवान् सूर्य वहाँ प्रकट हो गये थे या श्रीकृष्णचन्द्रका कोटिसूर्यसमप्रभ सुदर्शन चक्र, जिसके आचार्य मूर्त अवतार थे, प्रकट हो गया था। अतिथिके प्रसाद ग्रहण कर लेनेपर सूर्यमण्डल अदृश्य हो गया। इस घटनासे आचार्य निम्बादित्य या निम्बार्क नामसे विख्यात हुए। आचार्यका वह आश्रम 'निम्बग्राम' कहा जाता है। यह गोवर्धनके समीपका निम्बग्राम है, माटके समीपका नीमगाँव नहीं। वे यतिजी उस समय जहाँ आश्रम बनाकर रहते थे, वहाँ आज यतिपुरा नामक ग्राम है।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

निम्बादित्य नाम जाते भयो अभिराम कथा आयो एक दण्डी ग्राम न्यौतो करि आये हैं।
पाक को अबार भई सन्ध्या मानि लई जती रती हूँ न पाऊँ वेद वचन सुनाये हैं॥
आँगन में नींब तापै आदित दिखायौ ताहि भोजन करायो पाछे निशि चिन्ह पाये हैं।
प्रगट प्रभाव देखि जान्यो भक्ति भाव जग दांव पाइ नांव पर्यो हर्यो मन गाये हैं॥ १०६॥

श्रीनिम्बार्काचार्यजीका वेदान्तसूत्रोंपर भाष्य 'वेदान्तसौरभ' और 'वेदान्तकामधेनु' अथवा 'दशश्लोक'—ये दो ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इनके अतिरिक्त कृष्णस्तवराज, वेदान्ततत्त्वबोध, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्यतत्त्वसिद्धान्त, राधाष्टक आदि कई ग्रन्थ आचार्यके लिखे बताये जाते हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यजीके शिष्योंमें एक नाम श्रीऔदुम्बराचार्यजीका भी प्राप्त होता है। इनके उत्पत्तिकी कथा बड़ी ही विलक्षण सुननेमें आती है। कहा जाता है कि श्रीनिम्बार्काचार्यजी महाराज भक्तिका प्रचार करते-करते किसी ऐसे देशमें पहुँच गये, जहाँके लोग भगवद्भक्तिसे विमुख थे। उन लोगोंने आचार्यश्रीके साधुवेशको देखकर

उनके साथ उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार करना शुरू कर दिया, परंतु उनकी आशाके विपरीत आचार्यश्री शान्त ही रहे और तनिक भी क्रोधित नहीं हुए। आचार्यश्रीने वहीं स्थित एक गूलरके वृक्षके नीचे आसन लगा लिया और ध्यानस्थ हो गये। दुष्टजनोंको अब और अच्छा मौका मिल गया था; वे तरह-तरहके उपद्रव करते रहे। सहसा एक गूलरका फल वृक्षसे टूटकर आचार्यश्रीके चरणोंपर गिरा और उनके श्रीचरणोंसे स्पर्श होते ही एक दिव्य मानवाकृतिमें परिवर्तित हो गया तथा आचार्यश्रीकी वन्दना करते हुए उनके चरणोंमें प्रणिपात करने लगा।

इस अलौकिक घटनाको देखकर उन भगवद्विमुख दुष्टजनोंके होश उड़ गये। उन्होंने समझ लिया कि ये कोई सिद्ध महापुरुष हैं, इनकी हँसी उड़ाना या इन्हें किसी प्रकारसे अपमानित करना उचित नहीं है। इस घटनाकी खबर शीघ्र ही जंगलकी आगकी तरह चारों तरफ फैल गयी और उस भगवद्भक्तिविमुख देशके लोग भी आचार्यश्रीके शिष्य हो गये। उदुम्बर (गूलर) फलसे उत्पन्न होनेके कारण उस दिव्य पुरुषका आचार्यश्रीने औदुम्बराचार्य नाम रखा और उसे भक्तितत्त्वका उपदेश देकर भगवद्विमुख जीवोंका उद्धार करनेका आदेश दिया।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी तथा उनकी परम्पराके अधिकांश आचार्योंकी यह प्रधान विशेषता रही है कि उन्होंने दूसरे आचार्योंके मतका खण्डन नहीं किया है। श्रीदेवाचार्यजीने ही अपने ग्रन्थोंमें अद्वैतमतका खण्डन किया है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने प्रस्थानत्रयीके स्थानपर प्रस्थानचतुष्टयको प्रमाण माना और उसमें भी चतुर्थ प्रस्थान श्रीमद्भागवतको परम प्रमाण स्वीकार किया। अनेक वीतराग, भावुक भगवद्भक्त इस परम्परामें सदा ही रहे हैं।

श्रीसम्प्रदायके आचार्य

बिष्वकसेन मुनिबर्य सुपुनि सठकोप प्रनीता।
बोपदेव भागवत लुप्त उधर्‍यौ नवनीता॥
मंगल मुनि श्रीनाथ पुंडरीकाच्छ परम जस।
राममिश्र रस रासि प्रगट परताप परांकुस॥
जामुन मुनि रामानुज तिमिर हरन उदय भान।
सँप्रदाय सिरोमनि सिंधुजा रच्यो भक्ति बित्तान॥ ३०॥

समुद्रसुता श्रीलक्ष्मीजीने सभी सम्प्रदायोंमें श्रेष्ठ श्रीसम्प्रदायको भक्तिके मण्डपके समान बनाया, जिसके नीचे (पास) आकर त्रयतापसे तपे प्राणियोंने शरण पायी। भगवान्‌के पार्षद श्रीविष्वक्सेनजी श्रीलक्ष्मीजीके अनुयायी हुए। पश्चात् मुनिश्रेष्ठ श्रीशठकोपजी, जिनके द्वारा पवित्र श्रीसम्प्रदाय परिवर्धित हुआ। फिर श्रीबोपदेवजी हुए, जिन्होंने श्रीमद्भागवतरूपी मक्खनको प्रकट किया। पश्चात् मंगलकारी श्रीनाथमुनि, उसके बाद परम यशस्वी श्रीपुण्डरीकाक्षजी, तदनन्तर भक्तिरसके समूह श्रीराममिश्रजी हुए। फिर परांकुशाचार्यजी, जिनका प्रताप संसारमें प्रकट है। उनके बाद श्रीयामुनाचार्यजी और फिर अज्ञानरूपी अन्धकारको हरनेवाले सूर्यके समान श्रीरामानुजाचार्यजी हुए॥ ३०॥

श्रीसम्प्रदायके इन आचार्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीविष्वक्सेनजी

श्रीविष्वक्सेनजी श्रीभगवान्‌के प्रधान पार्षद हैं तथा पंचरात्रादि आगमरूप भी कहे गये हैं— **'विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः॥'** (श्रीमद्भा० १२।११।२०) भगवान् विष्णुके पार्षदोंमें इनका वही स्थान है, जो शिवगणोंमें श्रीगणेशजीका। इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका भगवती लक्ष्मीने सर्वप्रथम

इन्हींको श्रीनारायण-मन्त्रकी दीक्षा दी थी। विष्वक्सेनजी भगवान् विष्णुके निर्माल्यधारी कहे जाते हैं। वे चतुर्भुज हैं। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान रहते हैं। 'बँ' बीजमन्त्रसे उनकी पूजा होती है। ये भगवान् विष्णुकी पूजा-सपर्यामें सदा संलग्न रहते हैं। भगवान् विष्णुके विशेष पूजनमें इनका भी साथमें पूजन होता है। भगवद्भक्तोंपर इनका बड़ा ही अनुग्रह रहता है।

श्रीशठकोपाचार्य

तमिल वैष्णव सन्तोंमें महात्मा शठकोपका स्थान बहुत ऊँचा और आदरके योग्य गिना जाता है। इनका तमिल नाम नम्मालवार है और तमिल इन्हें जन्मसिद्ध वैष्णव मानते हैं। इनके प्रसिद्ध नाम शठकोपन् और मारन् भी हैं। ये भगवान् विष्णुके प्रमुख पार्षद विष्वक्सेनके अवतार माने जाते हैं।

शठकोपके पिताका नाम करिमारन् था। ये पाण्ड्यदेशके राजाके यहाँ किसी ऊँचे पदपर थे और आगे चलकर कुरुगनाडु नामक छोटे राज्यके राजा हो गये, जो पाण्ड्यदेशके ही अधीन था। शठकोपका जन्म अनुमानतः तिरुक्कुरुकूर नामक नगरमें हुआ था, जो तिरुनेल्वेली जिलेमें ताम्रपर्णी नदीके तटपर अवस्थित था। इनके सम्बन्धमें यह कथा प्रचलित है कि जन्मके बाद दस दिनतक इन्हें भूख, प्यास कुछ भी नहीं लगी। यह देखकर इनके माता-पिताको बड़ी चिन्ता हुई। वे इसका रहस्य कुछ भी नहीं समझ सके। अन्तमें यही उचित समझा गया कि इन्हें भगवान्‌के मन्दिरमें ले जाकर वहीं छोड़ दिया जाय। बस, इस निर्णयके अनुसार इन्हें स्थानीय मन्दिरमें एक इमलीके वृक्षके नीचे छोड़ दिया गया। तबसे लेकर सोलह वर्षकी अवस्थातक बालक नम्मालवार उसी इमलीके पेड़के कोटरमें योगकी प्रक्रियासे ध्यान और भगवान् श्रीहरिके साक्षात्कारमें लगे रहे। नम्मालवारकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। तिरुक्कोईलूर नामक स्थानके एक ब्राह्मण, जो मधुर कविके नामसे विख्यात थे, उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ ये बालक भक्त अपने भगवान् श्रीनारायणका ध्यान कर रहे थे।

इतिहास यह है कि जब नम्मालवारजी ध्यानमें मग्न थे, दयामय भगवान् नारायण उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें **'ॐ नमो नारायणाय'** इस अष्टाक्षर मन्त्रकी दीक्षा दी। बालक शठकोप पहलेसे ही विशेष शक्तिसम्पन्न थे और अब तो वे महान् आचार्य तथा धर्मके उपदेष्टा हो गये। कहते हैं कि नम्मालवार पैंतीस वर्षकी अवस्थातक इस मर्त्यलोकमें रहे और इसके बाद उन्होंने अपने भौतिक विग्रहको त्याग दिया। कहा जाता है, इनके जीवनका अधिकांश भाग राधाभावमें बीता। वे सर्वत्र सब समय सारी परिस्थितियों और घटनाओंमें अपने इष्टदेवमें ही रमे रहते। ये भगवान्‌के विरहमें रोते, चिल्लाते, नाचते, गाते और मूर्छित हो जाते थे। इसी बीचमें इन्होंने कई भक्तिभावपूर्ण धार्मिक ग्रन्थोंकी रचना की, जो बड़े विचारपूर्ण, गम्भीर और भगवत्प्रेरित जान पड़ते हैं। इनके प्रधान ग्रन्थोंके नाम तिरुविरुत्तम्, तिरुवाशिरियम्, पेरिय तिरुबन्त और तिरुवाय्मोलि हैं। महात्मा शठकोपके ये चार ग्रन्थ चार वेदोंके तुल्य माने जाते हैं। इन चारोंमें भगवान् श्रीहरिकी लीलाओंका वर्णन है और ये चारों-के-चारों भगवत्प्रेमसे ओतप्रोत हैं। ग्रन्थकारने अपनेको प्रेमिकाके रूपमें व्यक्त किया है और श्रीहरिको प्रियतम माना है। तिरुविरुत्तम्‌में आदिसे अन्ततक यही भाव भरा हुआ है। इनके ग्रन्थोंमेंसे अकेले तिरुवाय्मोलिमें, जिसका अर्थ है—पवित्र उपदेश, हजारसे ऊपर पद हैं। दक्षिणके वैष्णवोंके प्रधान ग्रन्थ दिव्यप्रबन्धम्‌के चतुर्थांशमें इसीके पद संगृहीत हैं। मन्दिरोंमें धार्मिक साहित्यमें तिरुवाय्मोलिका अपना निराला ही स्थान है। वहाँ इसके पाठका महत्त्व उतना ही माना जाता है, जितना वेदाध्ययन और वेदपाठका; क्योंकि इसमें वेदका सार भर दिया गया है।

श्रीबोपदेवजी

श्रीनाभादासजीने श्रीसम्प्रदायके आचार्योंमें श्रीबोपदेवजीका नाम बड़े ही आदरभावसे लिया है और इन्हें लुप्त भागवतका उद्धारकर्ता बताया है। बोपदेवजी महान् भगवद्भक्त तथा परम वैष्णव सन्त थे। इनका समय तेरहवीं शती है। ये धर्मशास्त्रके महान् निबन्ध ग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के प्रणेता हेमाद्रिके सभासद् थे और हेमाद्रि देवगिरिके राजा रामचन्द्रके मन्त्री थे। मन्त्रिप्रवर हेमाद्रिकी प्रसन्नताके लिये श्रीबोपदेवने भागवत-धर्मप्रधान अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। भागवततत्त्वका वर्णन करनेके लिये उन्होंने जिन तीन ग्रन्थोंका निर्माण किया, उनके नाम हैं—'परमहंसप्रिया', 'हरिलीलामृत' और 'मुक्ताफल'। हरिलीलामृतका ही दूसरा नाम भागवतानुक्रमणिका है। इसमें सम्पूर्ण भागवतका सारांश आ गया है। परमहंसप्रिया—इनके द्वारा की गयी भागवतकी संस्कृत टीका है। इन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर कुछ लोगोंने यह धारणा बना ली है कि श्रीमद्भागवत बोपदेवकी रचना है, व्यासदेवजीकी नहीं। वस्तुतः श्रीमद्भागवत अठारह पुराणोंके कर्ता भगवान् वेदव्यासजीकी ही रचना है।

श्रीबोपदेवजी भगवान्के परम भक्त थे। भगवान्के मंगलमय नाम तथा उनके गुणों एवं लीलाओंके चिन्तनमें ये सदा निमग्न रहते थे। इनका पाण्डित्य महान् था। इनकी रचना कवित्तकल्पद्रुमके वर्णनसे पता चलता है कि ये द्रविड़ ब्राह्मण थे और इनके पिताका नाम धनेश्वर था। बोपदेवजीने २६ ग्रन्थोंकी रचना की है। भागवतधर्मके प्रचार-प्रसार तथा भगवद्भक्तिकी प्रतिष्ठामें इनका महान् योगदान है। ये भगवत्प्रेमी सच्चे सन्त थे।

श्रीनाथमुनिजी

श्रीसम्प्रदायके आचार्योंमें परिगणित मुनित्रयमें श्रीनाथमुनिजीका अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। आप वेदशास्त्र-पुराणादिके प्रकाण्ड विद्वान्, सिद्ध और जीवन्मुक्त महात्मा थे। आपका जन्म द्रविड़देशके चिदम्बरम् क्षेत्रके तिरुनारायणपुरम् (कारटुमन्नार, वर्तमान वीरना-रायणपुरम्)-में हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीईश्वरभट्टर था। आपका विवाह वंगीपुराचार्यकी पुत्री अरविन्दजासे हुआ, जिससे ईश्वरमुनिका जन्म हुआ। ईश्वरमुनिके पुत्र श्रीयामुनाचार्यजी हुए, जिन्हें श्रीसम्प्रदायके आचार्योंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। श्रीनाथमुनिको ब्रजभूमि और यमुनातट विशेष प्रिय था, इसीलिये उन्होंने अपने पौत्रका नाम यामुन रखा।

श्रीनाथमुनिने उत्तर भारतके अनेक तीर्थोंकी यात्रा की और व्रजकी प्रेमलक्षणा नारदीय भक्तिका दक्षिणमें व्यापक प्रचार किया। आपने आलवारोंके प्रबन्धोंकी खोजके लिये भी अनेक यात्राएँ कीं। आप सिद्धयोगी थे, समाधि-अवस्थामें आपको श्रीशठकोपाचार्यजीका साक्षात्कार हुआ था और उनके कृपाप्रसादसे चार हजार दिव्य प्रबन्धोंकी आपको प्राप्ति हुई थी। समाधि-अवस्थामें ही आपने श्रीशठकोपजीसे वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की और रहस्यार्थसहित मन्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। आपके ही प्रयत्नोंसे श्रीरंगम्में भगवान्के मन्दिरमें आलवार भक्तोंके पद्योंके संगीतमय गायनका प्रारम्भ हुआ।

श्रीपुण्डरीकाक्षजी

श्रीपुण्डरीकाक्षजी महाराज परम वैष्णव अमानी सन्त थे। आप श्रीनाथमुनिके प्रिय शिष्य थे। ***'गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा।'***—यह आपके जीवनका सिद्धान्त था। आप कहते थे कि दूसरोंके दोषोंको छिपाने और अपने दोषोंको प्रकट करनेसे मानसिक दुर्बलताएँ दूर होती हैं तथा निजधर्ममें दृढ़ता होती है। श्रीनाथमुनिके शिष्य और प्रकाण्ड विद्वान् श्रीश्रीराममिश्रजी आपके समकालीन ही थे और आपमें बड़ा आदरभाव रखते थे। जीवनकी अनेक समस्याओंका समाधान पानेके लिये श्रीमिश्रजी श्रीपुण्डरीकाक्षजीके पास आते थे और उनसे भक्तिपूर्ण सम्यक् समाधान प्राप्त करते थे।

श्रीराममिश्रजी

श्रीराममिश्रजी श्रीयामुनाचार्यजीके पितामह श्रीनाथमुनिजीके अत्यन्त प्रिय कृपापात्र एवं विश्वासपात्र शिष्य थे। यहाँतक कि श्रीनाथमुनिजीने अपने अन्तिम समयमें इन्हींको श्रीयामुनाचार्यजीकी जिम्मेदारी दी थी; क्योंकि यामुनाचार्यजीके पिता ईश्वरमुनिका पहले ही परमधामगमन हो चुका था। श्रीमिश्रजी बड़े ही विद्वान् और सदाचारी थे, वे सबमें सर्वव्यापी परमात्माका दर्शन करते थे।

श्रीयामुनाचार्यजी

श्रीयामुनाचार्य महान् भक्त, भगवान्के परम विश्वासी और विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तके प्रचारक थे। आपका जन्म संवत् १०१० वि० में मदुरामें हुआ था। श्रीवैष्णवसम्प्रदायके आचार्य नाथमुनिके पुत्र ईश्वरमुनि आपके पिता थे। पिताकी मृत्युके समय आपकी अवस्था मात्र दस सालकी थी। पितामहके संन्यास ले लेनेपर आपका पालन-पोषण दादी और माताकी देख-रेखमें हुआ। आप बाल्यावस्थासे ही अद्भुत प्रतिभाशाली और विद्वान् थे। आपका स्वभाव बहुत मधुर, प्रेममय और उदार था। पाण्ड्यराजके महापण्डित कोलाहलको शास्त्रार्थमें परास्त करनेके उपलक्ष्यमें महारानीने आपको आधा राज्य सौंप दिया था, साथ ही 'आलवन्दार' की उपाधिसे विभूषित किया था। श्रीयामुनाचार्यजी और महापण्डित कोलाहलमें हुए शास्त्रार्थकी बड़ी रोचक कथा है, जो इस प्रकार है—

राजा पाण्ड्यके राज्यमें कोलाहल नामक एक विद्वान् थे, उन्होंने शास्त्रार्थमें अनेक पण्डितोंको हराया था, अतः उन्हें 'महापण्डित' का राजसम्मान प्राप्त था। राजाको शास्त्रार्थ सुनने और कोलाहलको विद्वान् पण्डितोंको हराकर अपमानित करनेमें विशेष आनन्द आता था। इधर श्रीयामुनमुनिकी विद्वत्ताकी भी ख्याति फैल रही थी, जो राजा पाण्ड्यके कानोंतक पहुँची। उन्हें अपने महापण्डितपर विश्वास था ही, अतः कौतूहलवशात् उन्होंने श्रीयामुनमुनिजीको कोलाहलसे शास्त्रार्थ करनेके लिये आमन्त्रित किया और आनेके लिये पालकी भेजी।

श्रीयामुनाचार्यजी जब पालकीपर बैठे आ रहे थे तो राजा-रानीने उन्हें महलके झरोखेसे देखा। रानीको आचार्यश्रीके चेहरेपर दिव्य तेज दिखायी पड़ा। उन्होंने महाराजसे कहा कि ये कोई दिव्य महापुरुष हैं, कोलाहल पण्डित इनसे जीत नहीं पायेंगे। राजाको अपने राज-पण्डितकी विद्वत्ता और पाण्डित्यपर बहुत गर्व था, अतः उन्होंने रानीकी बातका प्रतिवाद करते हुए कहा कि महापण्डित कोलाहल इन्हें जरूर हरा देंगे। रानीने अपनी बातपर जोर देते हुए कहा—महाराज! यदि कोलाहल पण्डित इन्हें हरा देंगे तो मैं रानीके स्थानपर आपकी दासी बन जाऊँगी और यदि ये महापुरुष विजयी हुए तो आपको इन्हें अपना आधा राज्य देना होगा। राजाने शर्त स्वीकार कर ली।

समयपर राजा पाण्ड्यका दरबार लगा। दोनों पण्डित आमने-सामने अपने-अपने आसनपर विराजमान हो गये। कोलाहलने घमण्डमें भरकर आचार्यश्रीसे कहा कि आप जो कुछ भी कहेंगे, मैं उसका खण्डन कर दूँगा। इसपर श्रीयामुनाचार्यजी महाराजने कहा कि मैं तीन बातें कह रहा हूँ, इनमेंसे यदि किसी एकका भी तुम खण्डन कर दोगे तो मैं तुम्हारा शिष्य हो जाऊँगा। यह कहकर उन्होंने कोलाहल पण्डितसे निम्नलिखित तीन बातें कहीं—(१) तुम्हारी माता काकवन्ध्या है, (२) राजा पाण्ड्य बड़े ही नीतिनिपुण और धर्मज्ञ हैं तथा (३) रानीजी बड़ी ही पतिव्रता और साधु स्वभाववाली हैं।

इन बातोंको सुनकर पण्डित कोलाहल अवाक् रह गये, उनकी समझमें न आया कि इन बातोंका खण्डन कैसे करें? क्योंकि वे अपनी माताके एकमात्र पुत्र थे, अतः माताके काकवन्ध्या होनेवाली बात सत्य ही

थी। शेष दो बातोंके खण्डन करनेका अर्थ था राजा-रानीपर दोष लगाना, यह भी उनके लिये सम्भव नहीं था; अतः उन्होंने मौन रहकर हार स्वीकार कर ली।

यामुनाचार्य जब पैंतीस सालके हुए तो अपने देहावसान-कालमें नाथमुनिने अपने शिष्यप्रवर राममिश्रसे कहा—'ऐसा न हो कि यामुन राजकार्यमें ही अपना अमूल्य समय बिता दें, विषय-भोगमें ही उनकी आयु बीत जाय।' नाथमुनिके देहावसानके बाद राममिश्र यामुनको उनकी सम्पत्तिका अधिकार सौंपनेके लिये ले जा रहे थे। रास्तेमें श्रीरंगके मन्दिरमें दर्शनके निमित्त आनेपर यामुनके हृदयमें सहसा भक्तिका स्रोत उमड़ आया। उनके हृदयमें पूर्ण और अखण्ड वैराग्यका उदय हुआ, माया और राज्यभोगकी प्रवृत्तिका नाश हो गया। उन्होंने शुद्ध हृदयसे भगवान् श्रीरंगकी स्तुति की—'परमपुरुष! मुझ अपवित्र, उद्दण्ड, निष्ठुर और निर्लज्जको धिक्कार है, जो स्वेच्छाचारी होकर भी आपका पार्षद होनेकी इच्छा करता है। आपके पार्षदभावको बड़े-बड़े योगीश्वरोंके अग्रगण्य तथा ब्रह्मा, शिव और सनकादि भी पाना तो दूर रहा, मनमें सोच भी नहीं सकते।' उन्होंने अत्यन्त सादगी और विनम्रतासे कहा कि 'आपके दास्यभावमें ही सुखका अनुभव करनेवाले सज्जनोंके घरमें मुझे कीड़ेकी भी योनि मिले, पर दूसरोंके घरमें मुझे ब्रह्माजीकी भी योनि न मिले।' वे भगवान् श्रीरंगके पूर्ण भक्त हो गये, उनके अधरोंपर भक्तिकी रसमयी वाणी विहार करने लगी।

श्रीयामुनाचार्यने भगवान्‌को पूर्ण पुरुषोत्तम माना, जीवको अंश और ईश्वरको अंशीके रूपमें निरूपित किया। जीव और ईश्वर नित्य पृथक् हैं। उन्होंने कहा कि जगत् ब्रह्मका परिणाम है। ब्रह्म ही जगत्‌के रूपमें परिणत है। जगत् ब्रह्मका शरीर है। ब्रह्म जगत्‌के आत्मा हैं। आत्मा और शरीर अभिन्न हैं। इसलिये जगत् ब्रह्मात्मक है। ब्रह्म सविशेष—सगुण, अशेष कल्याणगुणगणसागर सर्वनियन्ता हैं। जीव स्वभावसे ही उनका दास है, भक्त है; भक्ति जीवका स्वधर्म है, आत्मधर्म है। भक्ति शरणागतिका पर्याय है। भगवान् अशरण-शरण हैं।

यामुनाचार्य श्रीरामानुजके परमगुरु थे। स्तोत्ररत्न, सिद्धित्रय, आगमप्रामाण्य और गीतार्थसंग्रह उनके ग्रन्थरत्न हैं। उनका आलवंदारस्तोत्र बड़ा ही मधुर है। यामुनाचार्यने आजीवन भगवान्‌से अनन्य-भक्तिका ही वरदान माँगा। उनके लिये भगवान् ही परमाश्रय थे। उन्हींके चरणोंकी शरण लेनेमें उन्हें बन्धनमुक्ति दीख पड़ी। वे अपने समयके महान् दार्शनिक, अनन्य भक्त और विचारक थे। यामुनाचार्यने महाप्रयाणकालमें श्रीरामानुजाचार्यको याद किया, परंतु उनके पहुँचनेसे पहले ही वे दिव्यधामको पधार गये। उनकी तीन अंगुलियाँ उठी रह गयीं। वे ही उनके मनमें रही तीन कामनाएँ थीं, जिनको श्रीरामानुजाचार्यने पूर्ण किया।

श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीकूरेशाचार्यजी

गोपुर ह्वै आरूढ ऊँच स्वर मंत्र उचार्‌यो।
सूते नर परे जागि बहत्तरि श्रवननि धार्‌यो॥
तितनेई गुरुदेव पधति भइँ न्यारी न्यारी।
कुर तारक सिष्य प्रथम भक्ति बपु मंगलकारी॥
कृपनपाल करुना समुद्र रामानुज सम नहिं बियो।
सहस आस्य उपदेस करि जगत उद्धरन जतन कियो॥ ३१॥

सहस्र मुखवाले शेष भगवान्‌के अवतार श्रीरामानुजाचार्यजीने भक्तिपथका उपदेश देकर संसारके

उद्धारका महान् प्रयत्न किया। गुरुदेवने मन्त्र देकर जिसे गुप्त रखनेके लिये कहा था, उसका श्रीरामानुजाचार्यजीने मन्दिर-द्वारके सबसे ऊँचे भागपर चढ़कर ऊँचे स्वरसे उच्चारण किया, ताकि सभी लोग श्रवण कर सकें। मन्त्रध्वनिको सुनकर सोये हुए लोग जग पड़े और बहत्तर भक्तोंने उसे सुनकर हृदयमें धारण कर लिया। इसलिये अलग-अलग बहत्तर पद्धतियाँ हुईं। इनके शिष्योंमें कुरुतारकजी प्रधान थे, जो जीवोंका मंगल करनेवाले और भक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप थे। दीन एवं शरणागतोंका पालन करनेवाले करुणाके समुद्र श्रीरामानुजाचार्यके समान दूसरा कोई नहीं हुआ॥ ३१॥

श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीकुरुतारकजी (श्रीकूरेशाचार्यजी)-से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीरामानुजाचार्यजी

श्रीरामानुजाचार्य बड़े ही विद्वान्, सदाचारी, धैर्यवान्, सरल एवं उदार थे। ये आचार्य आलवन्दार (यामुनाचार्य)-की परम्परामें थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट था। ये दक्षिणके तिरुकुदूर नामक क्षेत्रमें रहते थे। जब इनकी अवस्था बहुत छोटी थी, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया और इन्होंने कांचीमें जाकर यादवप्रकाश नामक गुरुसे वेदाध्ययन किया। इनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि ये अपने गुरुकी व्याख्यामें भी दोष निकाल दिया करते थे। इसीलिये गुरुजी इनसे बड़ी ईर्ष्या करने लगे, यहाँतक कि वे इनके प्राण लेनेतकको उतारू हो गये। उन्होंने रामानुजके सहाध्यायी एवं चचेरे भाई गोविन्दभट्टसे मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि गोविन्दभट्ट रामानुजको काशीयात्राके बहाने किसी घने जंगलमें ले जाकर वहीं उनका काम तमाम कर दें। गोविन्दभट्टने ऐसा ही किया, परंतु भगवान्‌की कृपासे एक व्याध और उसकी स्त्रीने इनके प्राणोंकी रक्षा की।

विद्या, चरित्रबल और भक्तिमें रामानुज अद्वितीय थे। इन्हें कुछ योगसिद्धियाँ भी प्राप्त थीं, जिनके बलसे इन्होंने कांचीनगरीकी राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्त कर दिया। इस सन्दर्भमें बड़ी ही रोचक कथा है, जिससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यको जीवनमें जो कुछ प्राप्त होता है—वह केवल अपने पुरुषार्थसे ही नहीं प्राप्त होता, बल्कि उसके पीछे ईश्वरकृपा भी होती है। अतः मनुष्यको जो कुछ भी धन, विद्या आदिके रूपमें प्राप्त हो; उसे अन्यमें भी बाँटते रहना चाहिये। कांचीनरेशकी राजकुमारी जिस ब्रह्मराक्षससे आविष्ट थी, वह पूर्वजन्ममें एक विद्वान् ब्राह्मण था, परंतु उसने जीवनमें किसीको भी विद्यादान नहीं दिया, फलस्वरूप ब्रह्मराक्षस हुआ। राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्ति दिलानेके लिये अनेक मन्त्रज्ञ बुलाये गये, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। नरेशका आमन्त्रण पाकर रामानुजके गुरु यादवप्रकाशजी भी शिष्योंके साथ कांची आये। उन्होंने जैसे ही मन्त्र-प्रयोग प्रारम्भ किया, तुरंत ही ब्रह्मराक्षसने राजकुमारीके मुखसे कहा—तू जीवनभर मन्त्रपाठ करे तो भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हाँ, यह तेरा शिष्य रामानुज यदि मेरे मस्तकपर अपना अभय कर रख दे तो मैं इस प्रेतत्वसे मुक्त हो जाऊँगा।

श्रीरामानुजजीने आगे बढ़कर जैसे ही राजकुमारीके मस्तकपर भगवान्‌का स्मरण करते हुए हाथ रखा, राजकुमारी स्वस्थ हो गयी और उसे पीड़ित करनेवाला ब्रह्मराक्षस उस कुत्सित योनिसे मुक्त हो गया।

जब महात्मा आलवन्दार मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे थे, उन्होंने अपने शिष्यके द्वारा रामानुजाचार्यको अपने पास बुलवा भेजा। परंतु रामानुजके श्रीरंगम् पहुँचनेके पहले ही आलवन्दार (यामुनाचार्य) भगवान् नारायणके धाममें पहुँच चुके थे। रामानुजने देखा कि श्रीयामुनाचार्यके हाथकी तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। इसका कारण कोई नहीं समझ सका। रामानुज तुरंत ताड़ गये कि यह संकेत मेरे लिये है। उन्होंने यह जान लिया कि

श्रीयामुनाचार्य मेरेद्वारा ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और आलवन्दारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। उन्होंने आलवन्दारके मृत शरीरको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं इन तीनों ग्रन्थोंकी टीका अवश्य लिखूँगा अथवा लिखवाऊँगा।' रामानुजके यह कहते ही आलवन्दारकी तीनों उँगलियाँ सीधी हो गयीं। इसके बाद श्रीरामानुजने आलवन्दारके प्रधान शिष्य पेरियनाम्बिसे विधिपूर्वक वैष्णव-दीक्षा ली और वे भक्तिमार्गमें प्रवृत्त हो गये।

रामानुज गृहस्थ थे; परंतु जब उन्होंने देखा कि गृहस्थीमें रहकर अपने उद्देश्यको पूरा करना कठिन है, तब उन्होंने गृहस्थका परित्याग कर दिया और श्रीरंगम् जाकर यतिराज नामक संन्यासीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली। श्रीरामानुजाचार्यजीके संन्यास-ग्रहणकी घटना भी बड़ी विलक्षण है, जिससे यह सिद्ध होता है कि साधकके जीवनमें आनेवाली प्रतिकूलताएँ उसके अध्यात्म-पथपर आगे बढ़नेके लिये सोपान बनती हैं। आचार्यश्रीकी पत्नी इनसे ठीक प्रतिकूल स्वभावकी थीं। श्रीरामानुजाचार्यजी श्रीयामुनाचार्यजीसे वैष्णवदीक्षा लेना चाहते थे, परंतु ऐसा संयोग बने उससे पूर्व ही श्रीयामुनाचार्यजी महाराज परमधामको प्रस्थान कर गये। अतः आचार्यश्रीने उनके पाँच प्रमुख शिष्यों (श्रीकांचीपूर्णजी, श्रीमहापूर्णजी, श्रीगोष्ठीपूर्णजी, श्रीशैलपूर्णजी और श्रीमालाधरजी)-से पाँच उपदेश ग्रहण किये और उन्हें गुरु माना। एक दिन उन्होंने अपने गुरु श्रीकांचीपूर्णजी महाराजको अपने घरपर भगवान्‌का भोग लगाने और प्रसाद ग्रहण करनेके लिये आमन्त्रित किया और अपनी पत्नी तंजमाम्बासे प्रसाद तैयार करनेको कहा। प्रसाद तैयार होनेपर जब वे गुरुजीको बुलानेके लिये गये तो गुरुजी किसी अन्य मार्गसे पहले ही उनके घर पहुँच गये। तंजमाम्बाने उनको प्रसाद तो ग्रहण कराया, पर रसोईमें बचा हुआ समस्त भोजन शूद्रोंमें बाँटकर और रसोई धो-साफकर पुनः भोजन बनाकर रामानुजजीको दिया। रामानुजजीने जब इसका कारण पूछा तो तंजमाम्बाने कहा कि कांचीपूर्णजी हीनजातिके हैं, अतः उनका उच्छिष्ट मैं आपको नहीं दे सकती। पत्नीके मनमें गुरुके प्रति इस प्रकारके कुभाव जानकर रामानुजजी मन-ही-मन बहुत दुखी हुए।

बात यहींपर समाप्त हो जाती तो भी ठीक था, परंतु तंजमाम्बाने तो सम्भवतः इनके गुरुओंको अपमानित करना अपना स्वभाव ही बना लिया था। एक दिन उनके दूसरे गुरु श्रीमहापूर्णाचार्यजी महाराजकी पत्नी कुएँपर जल भरने आयीं, तंजमाम्बा भी जल भर रही थीं, संयोगवश इनके घड़ेका कुछ जल छलककर तंजमाम्बाके घड़ेमें पड़ गया; फिर क्या था; तंजमाम्बाने गुरुपत्नीपर कुवाच्योंकी झड़ी लगा दी। बेचारी गुरुपत्नी कुछ बोल न सकीं और घर जाकर सारी बात श्रीमहापूर्णजी महाराजसे बतायीं। श्रीमहापूर्णजी महाराजने उन्हें सांत्वना दी और चुपचाप उनको साथ लेकर कांचीसे श्रीरंगम् आ गये। जब रामानुजको इस बातकी जानकारी हुई तो उनके दुःखका पारावार न रहा।

इसके बाद घटी एक अन्य घटनाने तो उनके गृहस्थ-जीवनमें विराम-चिह्न ही लगा दिया। हुआ यूँ कि एक दिन ये भगवान् वरदराजकी सेवामें गये हुए थे, उसी समय एक भूखा गरीब ब्राह्मण इनके घर आ गया। तंजमाम्बाने उसका सत्कार करना तो दूर; ऐसी कड़ी फटकार लगायी कि वे बेचारे ब्राह्मणदेवता अपने भाग्यको कोसते हुए उलटे पाँव भाग खड़े हुए। संयोगवश रामानुजजी मार्गमें ही मिल गये और उन्हें सारी बातें ज्ञात हुईं। रामानुजजी दुखी तो बहुत हुए, परंतु ब्राह्मणको समझा-बुझाकर धैर्य धारण कराया और मन-ही-मन संन्यास-ग्रहणका निर्णय ले लिया। उन्होंने ब्राह्मणदेवताको बाजारसे कुछ फल आदि खरीदकर दिये और कहा कि आप पुनः मेरे घर जायँ और मेरी पत्नीसे कहें कि मैं तुम्हारे मायकेसे आया हूँ। तुम्हारी बहनका विवाह होनेवाला है और तुम्हारे माता-पिताने यह सामग्री तुम्हें उपहारस्वरूप भेजी है।

यह सुनकर वे आपका बहुत आदर-सत्कार करेंगी। ब्राह्मणने ठीक वैसा ही किया। तंजमाम्बाने ब्राह्मणका बड़ा आदर-सत्कार किया। थोड़ी देर बाद जब रामानुज आये तो उनसे भी तंजमाम्बाने बहनके विवाहकी बात बतायी। रामानुजजीने कहा—'यह तो बहुत आनन्दकी बात है, तुम जाना चाहो तो आज ही चली जाओ, उत्सवके दिन मैं भी आ जाऊँगा।' तंजमाम्बा खुशी-खुशी मायकेके लिये चल दी, इधर रामानुजजीने संन्यास ग्रहण कर लिया।

इधर इनके गुरु यादवप्रकाशको अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे भी संन्यास लेकर श्रीरामानुजकी सेवा करनेके लिये श्रीरंगम् चले आये। उन्होंने अपना संन्यास-आश्रमका नाम गोविन्दयोगी रखा।

श्रीरामानुजने तिरुकोट्टियूरके महात्मा नाम्बिसे अष्टाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**)-की दीक्षा ली थी। नाम्बिने मन्त्र देते समय इनसे कहा था कि 'तुम इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परंतु रामानुजने सभी वर्णके लोगोंको एकत्रकर मन्दिरके शिखरपर खड़े होकर सब लोगोंको वह मन्त्र सुना दिया। गुरुने जब रामानुजकी इस धृष्टताका हाल सुना, तब वे इनपर बड़े रुष्ट हुए और कहने लगे—'तुम्हें इस अपराधके बदले नरक भोगना पड़ेगा।' श्रीरामानुजने इसपर बड़े विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन्! यदि इस महामन्त्रका उच्चारण करके हजारों आदमी नरककी यन्त्रणासे बच सकते हैं तो मुझे नरक भोगनेमें आनन्द ही मिलेगा।' रामानुजके इस उत्तरसे गुरुका क्रोध जाता रहा, उन्होंने बड़े प्रेमसे इन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामानुजने अपने समदर्शिता और उदारताका परिचय दिया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका एक कवित्तमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

आस्य सो बदन नाम सहस हजार मुख शेष अवतार जानो वही सुधि आई है।
गुरु उपदेशि मन्त्र कह्यो नीके राखो अन्त्र जपतहि श्यामजू ने मूरति दिखाई है॥
करुणानिधान कही सब भगवान पावैं चढ़ि दरवाजे सो पुकार्यौ धुनि छाई है।
सुनि सीखे लियो यों बहत्तर हि सिद्ध भये नये भक्ति चोज यह रीति लै कै गाई है॥ १०७॥

यद्यपि श्रीरामानुजाचार्यजी उदार और समदर्शी प्रकृतिके थे, परंतु आचार-विचारके आप बहुत ही पक्के थे और उसमें जरा-सी भी ढिलाई पसन्द नहीं करते थे। एक बार आप श्रीजगन्नाथस्वामीका दर्शन करने जगन्नाथपुरी गये। वहाँ उन्होंने देखा कि पण्डे-पुजारी आचारभ्रष्ट हैं। इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। इस समस्याके समाधानके लिये वे वहाँके राजासे मिले और उनका ध्यान पुजारियोंकी आचारहीनताकी ओर आकृष्ट कराया। राजाकी सहमतिसे उन्होंने सभी पण्डे-पुजारियोंको हटाकर अपने एक हजार शिष्योंको भगवान् श्रीजगन्नाथस्वामीकी सेवा-पूजा सौंप दी।

इधर पण्डे-पुजारी सेवा-पूजासे हटा दिये जानेके कारण वृत्तिहीन हो गये। वे बेचारे मन्दिरके पीछे बैठकर रोने-बिलखने और महाप्रभुसे क्षमा-प्रार्थना करने लगे। प्रभु तो परम करुणामय हैं ही, उनसे पण्डे-पुजारियोंका दुःख न देखा गया। उन्होंने स्वप्नमें रामानुजाचार्यजीसे कहा कि वे पण्डे-पुजारियोंको सेवा-पूजा करने दें। इसपर रामानुजजीने कहा कि वे मन्दिरमें वेद-विरुद्ध शूद्रवत् आचारण करते हैं, अतः मैं उन्हें मन्दिरमें प्रवेश ही नहीं करने दूँगा। भगवान्ने कहा कि वे लोग जब मेरे सम्मुख ताली बजाकर नृत्य करते हैं, तो वह मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, अतः मेरी सेवा-पूजाका कार्य तुम उन्हें ही दे दो। परंतु रामानुज उन पण्डोंको किसी भी शर्तपर सेवा-पूजाका कार्य नहीं सौंपना चाहते थे। करुणामय भगवान्को अपने भक्त रामानुजका हठ भी रखना था और अपने दीन सेवकोंपर भी करुणा करनी थी। अतः उन्होंने

गरुड़जीको आज्ञा दी कि रामानुजको शिष्यों समेत श्रीरंगनाथधाम पहुँचा दो। गरुड़जीने प्रभुके आज्ञानुसार रामानुजाचार्यजीको शिष्योंसहित रातमें सोते समय श्रीजगन्नाथधामसे श्रीरंगनाथधाम पहुँचा दिया। प्रातः जगनेपर इस आश्चर्यमयी घटनाको देख रामानुजजी प्रभुकी भक्तवत्सलताका अनुभवकर गद्गद हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गये नीलाचल जगन्नाथ जू के देखिबे कों देख्यो अनाचार सब पण्डा दूरि किये हैं।
सङ्ग लै हजार शिष्य रङ्ग भरि सेवा करैं धरैं हिये भाव गूढ़ दरसाय दिये हैं॥
बोले प्रभु वेई आवैं करे अङ्गीकार मैं तो प्यार ही को लेत कभूं औगुन न लिये हैं।
तऊ दृढ़ कीनी फिरि कही नहीं कान दीनी लीनी वेदवाणी विधि कैसे जात छिये हैं॥ १०८॥
जोरावर भक्त सों बसाइ नहीं कही किती रती हूँ न लावैं मन चोज दरसायो है।
गरुड़ कौ आज्ञा दई सोई मानि लई उन शिष्यनि समेत निज देश छोड़ि आयो है॥
जागिकै निहारे ठौर और ही मगन भये दिये यों प्रकट करि गूढ़ भाव पायो है।
वेई सब सेवा करैं श्याम मन सदा हरैं धरैं सांचो प्रेम हिये प्रभुजू दिखायो है॥ १०९॥

रामानुजने आलवन्दारकी आज्ञाके अनुसार आलवारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' का कई बार अनुशीलन किया और उसे कण्ठ कर डाला। उनके कई शिष्य हो गये और उन्होंने इन्हें आलवन्दारकी गद्दीपर बिठाया; परंतु इनके कई शत्रु भी हो गये, जिन्होंने कई बार इन्हें मरवा डालनेकी चेष्टा की। एक दिन इनके किसी शत्रुने इन्हें भिक्षामें विष मिला हुआ भोजन दे दिया; परंतु एक स्त्रीने इन्हें सावधान कर दिया और इस प्रकार रामानुजके प्राण बच गये। रामानुजने आलवारोंके भक्तिमार्गका प्रचार करनेके लिये सारे भारतकी यात्रा की और गीता तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखे। वेदान्तसूत्रोंपर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नामसे प्रसिद्ध है और इनका सम्प्रदाय भी 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है; क्योंकि इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती हैं। यह ग्रन्थ पहले-पहल काश्मीरके विद्वानोंको सुनाया गया था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कूरत्तालवार (कूरेश) था। कूरत्तालवारके पराशर और पिल्लन् नामके दो पुत्र थे। रामानुजने पराशरके द्वारा विष्णुसहस्रनामकी और पिल्लन्से 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका लिखवायी। इस प्रकार उन्होंने आलवन्दारकी तीनों इच्छाओंको पूर्ण किया।

इस समय आचार्य रामानुज मैसूरराज्यके शालग्राम नामक स्थानमें रहने लगे थे। वहाँके राजा भिट्टिदेव वैष्णवधर्मके सबसे बड़े पक्षपाती थे। आचार्य रामानुजने वहाँ बारह वर्षतक रहकर वैष्णवधर्मकी बड़ी सेवा की। सन् १०९९ ई० में उन्हें नम्मले नामक स्थानमें एक प्राचीन मन्दिर मिला और राजाने उसका जीर्णोद्धार करवाकर पुनः नये ढंगसे निर्माण करवाया। वह मन्दिर आज भी तिरुनारायणपुरके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर भगवान् श्रीरामका जो प्राचीन विग्रह है, वह पहले दिल्लीके बादशाहके अधिकारमें था। बादशाहकी लड़की उसे प्राणोंसे भी बढ़कर मानती थी। रामानुज अपनी योगशक्तिके द्वारा बादशाहकी स्वीकृति प्राप्तकर उस विग्रहको वहाँसे ले आये और उसकी पुनः तिरुनारायणपुरमें स्थापना की।

इस सन्दर्भमें जो कथा प्राप्त होती है, वह भगवान्की अतिशय भक्तवत्सलताकी कथा है। हुआ यूँ कि भगवान्ने आचार्यश्रीको स्वप्नमें बताया कि मेरी उत्सवमूर्ति बादशाहके यहाँ दिल्लीमें है, उसकी आप स्थापना कीजिये। भगवान्का आदेश मानकर रामानुजजीने बहुत-से वैष्णवोंको लेकर बादशाहका किला घेर लिया। जब बादशाहको यह समाचार मिला तो उसने अपने मन्त्रीसे कहा कि आचार्यश्रीको संग्रहालयमें

ले जाकर सभी मूर्तियोंके दर्शन करा दो और जो मूर्ति इनकी इष्ट हो, वह इन्हें प्राप्त करा दो। रामानुजजीने संग्रहालयमें जाकर मूर्तियोंके दर्शन किये, परंतु उन्हें वह मूर्ति न दिखायी दी, जिसके लिये भगवान्ने आदेश दिया था। इससे रामानुजजी बहुत ही चिन्तित और दुखी हुए। उन्हें व्याकुल देखकर भगवान्ने रात्रिमें पुनः स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि मैं शहजादीके पास हूँ और उसकी प्रीति-डोरसे बँधा हूँ। वह मुझसे इतना स्नेह करती है कि एक भी क्षणको अलग करना नहीं चाहती।

रामानुजजीने पुनः बादशाहसे भेंट की और उन्हें सारी बात बतलायी। बादशाहने शहजादीसे कहा कि वह उस मूर्तिको इन हिन्दू साधुको सौंप दे और उसके बदलेमें उसके लिये मणिनिर्मित मूर्ति बनवा दी जायगी, परंतु शहजादी किसी भी प्रलोभनपर मूर्ति अपनेसे अलग करनेको राजी न हुई। अन्तमें यह निर्णय हुआ कि मूर्ति सभाके मध्यमें रखी जायगी और जिसके बुलानेपर वह चली आयेगी, वही उसकी प्राप्तिका अधिकारी होगा।

दूसरे दिन मूर्तिका शृंगारकर उसे सभाके मध्यमें पधरा दिया गया और आचार्यश्री तथा शहजादी—दोनोंसे मूर्तिको अपने पास बुलानेके लिये कहा गया। सर्वप्रथम आचार्यश्रीने मूर्तिका आवाहन किया, परंतु मूर्ति टस-से-मस न हुई। इसके बाद शहजादीने अपने आराध्यरूप मूर्ति-विग्रहसे विनय की तो मूर्ति बड़े ही प्रेमके साथ शहजादीकी ओर चल दी। यह देखकर अन्य लोग तो विस्मित हो गये, परंतु आचार्यश्री कुपित होकर भगवान्से बोले—'यदि सभामें आपको मेरा अपमान ही करना था तो मुझे स्वप्न देकर बुलाया ही क्यों?' आचार्यश्रीके इस प्रकार उलाहना देनेपर मूर्ति पुनः वापस लौटकर उनकी गोदमें विराजमान हो गयी। सभा धन्य-धन्य कह उठी। मूर्ति लेकर वैष्णवजन तो चल दिये, पर शहजादीने अन्न-जल त्याग दिया। बादशाहको लगा कि उसकी पुत्री प्राण दे देगी तो उसने उसे भी आचार्यजीके पीछे जानेकी अनुमति दे दी। शहजादीको इस प्रकार मार्गमें तो मूर्तिके दर्शन मिलते रहे, पर मन्दिरमें प्रतिष्ठित होनेके बाद उसका प्रवेश-निषेध हो गया। तब करुणामय भगवान्से उसका दुःख न देखा गया और कहा जाता है कि उन्होंने सबके देखते-देखते उसे अपने श्रीविग्रहमें लीन कर लिया। शहजादीके अतिशय प्रेमके प्रतीकरूपमें आज भी उसकी एक सुवर्णप्रतिमा भगवान्के समीप विद्यमान है।

कुछ समय पश्चात् आचार्य रामानुज श्रीरंगम् चले आये। वहाँ उन्होंने एक मन्दिर बनवाया, जिसमें नम्मालवार और दूसरे आलवार सन्तोंकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं और उनके नामसे कई उत्सव भी जारी किये। उन्होंने तिरुपतिके मन्दिरमें भगवान् गोविन्दराज-पेरुमलकी पुनः स्थापना करवायी और मन्दिरका पुनः निर्माण करवाया। उन्होंने देशभरमें भ्रमण करके हजारों नर-नारियोंको भक्तिमार्गमें लगाया। आचार्य रामानुजके चौहत्तर शिष्य थे, जो सब-के-सब सन्त हुए। इन्होंने कूरत्तालवारके पुत्र महात्मा पिल्ललोकाचार्यको अपना उत्तराधिकारी बनाकर एक सौ बीस वर्षकी अवस्थामें इस असार-संसारको त्याग दिया।

श्रीकूरेशाचार्यजी

श्रीमद्रामानुजाचार्यजीके शिष्योंमें श्रीकूरेशजीका अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। भोगोंके बीच रहते हुए भी निरासक्त रहना, अद्भुत मेधासम्पन्न होनेपर भी अहंकारका लेशमात्र भी न होना, अपने गुरुके प्रति सर्वस्व समर्पण करना और धर्मरक्षाहेतु प्राणोंको न्योछावर करनेके लिये तत्पर रहना-जैसे गुणोंका यदि एक साथ किसीमें दर्शन करना हो तो श्रीकूरेशाचार्यजी महाराज उसके अप्रतिम उदाहरण हैं।

श्रीकूरेशजी लक्ष्मी एवं सरस्वतीके वरद पुत्र थे। दोनोंकी उनपर अपार कृपा थी। कांचीपुरीसे दो कोस दूर कूरपुर नामका एक राज्य था, कूरेशजी वहाँके राजा थे। सन्तों-वैष्णवोंकी सेवा, दीनोंमें दीनदयालका

दर्शन करना और अन्न-वस्त्रसे उनकी सेवा करना उनका जीवन-सिद्धान्त था। उनके राजद्वारपर प्रातःकालसे अर्धरात्रितक याचकोंको अन्न-वस्त्र वितरित होता और फाटक बन्द होनेसे पूर्व घण्टा-ध्वनि करके यह कहा जाता कि जो लोग अन्न-वस्त्र न प्राप्त कर सके हों, वे आकर प्राप्त कर लें।

कहते हैं कि घण्टा-ध्वनि जब एक दिन कांचीपुरीमें सुनायी पड़ी तो माता लक्ष्मीने वरदराजभगवान्‌से उस ध्वनिके विषयमें पूछा, इसपर भगवान् वरदराजने माता लक्ष्मीको कूरेशजीकी दान-गाथा सुनायी। माता लक्ष्मीको कूरेशजीके कार्यसे बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने प्रभुसे ऐसे भक्तके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की। भगवान् वरदराजने अपने पुजारी श्रीकांचीपूर्णजीको कूरेशजीको बुला लानेकी आज्ञा दी।

भगवान् वरदराजकी आज्ञा और माता लक्ष्मीकी इच्छा सुनकर कूरेशजी आनन्दमग्न हो गये, उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा कि यह हम लोगोंका धन्यभाग है कि माता लक्ष्मीने हमें याद किया है! यह शरीर तो अत्यन्त पतित है। अतः इसे पावन करनेके लिये हमें सबसे पहले भगवान् रामानुजाचार्यजीसे दीक्षा लेनी चाहिये। यह निश्चयकर वे सपत्नीक श्रीरामानुजके दर्शनके लिये श्रीरंगम् चल दिये। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका दान कर दिया और अंकिचन होकर, एक साधारण वस्त्र पहनकर श्रीरंगम्‌के लिये चल पड़े। रास्तेमें घना जंगल पड़ता था, कूरेशजीकी पत्नी भयभीत होने लगीं, इसपर कूरेशजीने कहा—देवि! अंकिचनके लिये कहाँ भय है, लगता है तुम्हारे पास कुछ धन है, इसीलिये तुम भयभीत हो। कूरेशजीकी पत्नीने एक स्वर्णमुद्रा अपने पास छिपा रखी थी, उन्होंने उसे भी फेंक दिया और इस प्रकार सर्वस्व त्यागकर कूरेश दम्पती आचार्य रामानुजकी शरणमें पहुँच गये, फिर श्रीरामानुजजीने इन्हें नारायण-मन्त्रकी दीक्षा दी और वहीं रहनेकी व्यवस्था कर दी। अब कूरेश-दम्पतीका जीवन नये प्रकारका हो गया था, जो कल राजाके रूपमें महादानी थे, वे ही अब भिक्षा करके भोजन करते थे। एक दिन अतिवृष्टिके कारण ये भिक्षार्थ नहीं जा सके और भूखे ही भगवत्स्मरण करते रहे। उनकी पत्नीने पतिको भोजन कराना अपना धर्म समझकर भगवान्‌से प्रार्थना की, तुरंत ही भगवान्‌के भोगका थाल लेकर पुजारीजी वहाँ आ गये। वस्तुतः घट-घटवासी प्रभुने स्वयं ही पुजारीके अन्तःकरणमें इस बातकी प्रेरणा दी थी। भगवत्प्रसादका थाल देखकर कूरेशजीके मनमें आश्चर्यमिश्रित आनन्द हुआ, उन्होंने अपनी पत्नीसे पूछा कि यह थाल कैसे आया? इसपर पत्नीने कहा—'नाथ! मैंने अपने पत्नी-धर्मका निर्वाह करनेके लिये प्रभुसे याचना की थी', इसपर कूरेशजीने उन्हें समझाया कि इस प्रकार बार-बार भगवान्‌को कष्ट देना उचित नहीं है।

किंवदन्ती है कि उस भगवत्प्रसादके प्रभावसे कूरेशजीको दो पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति हुई। दोनों ही पुत्र सर्वगुण-सम्पन्न और भगवद्भक्त थे। श्रीरामानुजजीने बड़ेका नाम पराशरभट्ट और छोटेका श्रीराम नाम रखा। एक बारकी बात है, सर्वज्ञभट्ट नामक एक दिग्विजयी पण्डित अपने शास्त्र-ज्ञानके अहंकारमें श्रीरंगपुरी आये और वहाँके विद्वानोंको शास्त्रार्थकी चुनौती दी। पराशरभट्ट उस समय बालक थे, वे धूलमें खेल रहे थे। अचानक उन्होंने एक अंजुलि धूल उठायी और दिग्विजयी पण्डितके पास जाकर कहा—पण्डितजी! मेरी अंजुलिमें धूलके कितने कण हैं? पण्डितजी कुछ भी उत्तर न दे सके और हक्के-बक्के रह गये। इसपर बालक पराशरने कहा—जब इतना भी नहीं जानते तो अपना नाम सर्वज्ञ क्यों रखा है? दिग्विजयी पण्डित बालक पराशरके चरणोंमें गिर गये और अहंकारशून्य होकर बोले—'आप मेरे गुरु हैं।'

आचार्य रामानुजजीने ब्रह्मसूत्रपर श्रीभाष्य लिखा है। उनके इस श्रीभाष्यलेखनमें श्रीकूरेशजीकी अद्भुत मेधाशक्तिकी दिग्दर्शना होती है। हुआ यूँ कि श्रीभाष्य लिखनेके लिये रामानुजजीको 'बोधायनवृत्ति'

की आवश्यकता थी। यह अत्यन्त दुर्लभ ग्रन्थ था, जो कि कश्मीरके शारदापीठमें ही प्राप्त हो सकता था। परंतु वहाँके अद्वैतसमर्थक विद्वान् इसे देना नहीं चाहते थे; क्योंकि वे इस बातसे भयभीत थे कि इस ग्रन्थके प्राप्त हो जानेपर आचार्य रामानुज हमारे अद्वैतमतका खण्डन करके अपने विशिष्टाद्वैत मतका प्रतिस्थापन करेंगे। अतः उन लोगोंने बहाना बनाया। स्वामीजी उदास हो गये, तब रात्रिमें भगवती शारदा देवीने स्वयं वह ग्रन्थ लाकर रामानुजजी को दे दिया और कहा कि आपलोग यहाँसे चले जाइये, अन्यथा ये लोग इसे पुनः छीन लेंगे। भगवती शारदा देवीका आदेश स्वीकारकर रामानुजजी वहाँसे चल दिये। पुस्तककी सुरक्षाका भार उन्होंने कूरेशजीपर सौंप दिया, इधर कुछ दिन बाद शारदापीठके पण्डितोंने देखा कि बोधायनवृत्ति तो अपने स्थानपर है ही नहीं तो उन्हें यह शंका हुई कि रामानुज और उनके साथ आये हुए उनके शिष्य ग्रन्थको चुरा ले गये। अब क्या था, उन लोगोंने क्रुद्ध होकर रामानुजजीका पीछा किया और एक महीनेमें रामानुजजीतक पहुँच ही गये और उनसे ग्रन्थ छीन लिया। इससे रामानुजाचार्यजीको अत्यन्त वेदना हुई। उन्हें लगा कि उनका ब्रह्मसूत्रपर भाष्य करनेका संकल्प अधूरा ही रह जायगा। अपने गुरुदेवको इस प्रकार दुखी देखकर कूरेशजीने कहा—प्रभो! आप दुखी न हों, कश्मीरसे चलते समय प्रत्येक रात्रिमें आपके सो जानेके पश्चात् मैं ग्रन्थका पाठ किया करता था। ऐसा करते हुए एक माहमें मुझे पूरा ग्रन्थ कण्ठस्थ हो गया है। आप आज्ञा दें तो मैं उसे तुरंत ही लिख डालूँ। रामानुजाचार्यजीका हृदय कूरेशजीकी यह बात सुनकर गद्‌गद हो गया। उन्होंने कूरेशजीको अपने हृदयसे लगा लिया और कहा—वत्स! तुम चिरंजीवी होओ, तुम गुरु-ऋणसे उऋण हो गये। इस प्रकार कूरेशजीकी दिव्य मेधा शक्ति श्रीभाष्यकी रचनामें आधारपीठिका बनी।

चार महान् सन्त

श्रुतिप्रज्ञा श्रुतिदेव रिषभ पुहकर इभ ऐसे।
श्रुतिधामा श्रुति उदधि पराजित बामन जैसे॥
(श्री) रामानुज गुरुबंधु बिदित जग मंगलकारी।
सिवसंहिता प्रनीत ग्यान सनकादिक सारी॥
इँदिरा पधति उदारधी सभा साखि सारँग कहैं।
चतुर महँत दिग्गज चतुर भक्ति भूमि दाबे रहैं॥ ३२॥

श्रीश्रुतिप्रज्ञ, श्रीश्रुतिदेव, श्रीश्रुतिधाम तथा श्रीश्रुतिउदधि—ये चार महान् सन्त चार दिग्गजोंके समान थे। ये भक्तिरूपी भूमिको अपने प्रभावसे अचल रखते थे अर्थात् कोई भी विधर्मी भक्तिका थोड़ा भी विरोध अथवा खण्डन करनेका साहस नहीं करता था। श्रीश्रुतिप्रज्ञजी और श्रीश्रुतिदेवजी—दोनों श्रीऋषभ और श्रीपुष्कर—इन दो दिग्गजोंके समान थे, श्रीश्रुतिधामजी और श्रीश्रुतिउदधिजी—ये पराजित और वामन नामक दिग्गजोंके समान थे। ये चारों श्रीरामानुजाचार्यके गुरुभाई थे। ये अपनी भक्तिनिष्ठा और विद्वत्ताके कारण विश्वमें विख्यात थे एवं संसारका मंगल करनेवाले थे। शिवसंहितामें वर्णित ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेमें सनकादिकोंके समान थे। ये श्रीसम्प्रदायमें निष्ठावान् और उदार बुद्धिवाले थे। सन्तसभाके दर्शक-सत्संगी लोग इन्हें दिग्गज विद्वान् कहते थे॥ ३२॥

श्रीश्रुतिप्रज्ञ आदि इन महान् सन्तोंका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी परम भागवत समदर्शी सन्त थे। श्रुति-सिद्धान्तके विशेष ज्ञाता होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा। जाति-पाँतिकी संकीर्णतासे दूर रहनेवाले और सदा भगवन्नामका जप एवं उपदेश करनेवाले श्रीश्रुतिप्रज्ञजी महाराज भक्तिको ही सबसे बड़ा आचार मानते थे, इसीलिये उन्हें 'भक्ति-भूमि-दिग्गज' कहा गया है अर्थात् जिस प्रकार दिग्गज लोग भूमिको धारणकर स्थिर रखते हैं, वैसे ही श्रुतिप्रज्ञजी भक्तिको अचल रखनेवाले थे, तत्कालीन विधर्मी उनके कारण समाजसे भक्तिका उन्मूलन न कर सके।

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी महाराजका जीवन गीताके श्लोक—'**विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥**' का साक्षात् स्वरूप था। आप श्वपचतकमें अपने आराध्य प्रभुके ही दर्शन करते थे। कहते हैं कि एक बार आप महाप्रभु जगन्नाथजीका दर्शन करने श्रीजगन्नाथधाम नीलाचल जा रहे थे। जब पुरीसे वे कुछ ही दूरीपर थे तो उन्हें उधरसे एक श्वपच भगवान् श्रीजगन्नाथस्वामीका दर्शन करके लौटता दिखायी दिया, उसके हाथमें भगवान्‌का प्रसाद था।

उस श्वपचने जब श्रुतिप्रज्ञजीको देखा तो उसका हृदय श्रद्धासे अत्यन्त गद्‌गद हो उठा। उसे लगा कि मैंने जो महाप्रभुका दर्शन किया था, उस पुण्यके फलस्वरूप मुझे इन सन्तका दर्शन करनेका सौभाग्य मिला है। ***'राम तें अधिक राम कर दासा'*** के भावसे उसका हृदय गद्‌गद हो उठा और उसने दण्डकी भाँति गिरकर श्रीश्रुतिप्रज्ञजी महाराजके चरणोंमें प्रणिपात किया। उस समय उसकी आँखोंसे आनन्दाश्रुओंका प्रवाह हो रहा था। उसकी यह भावपूर्ण दशा देखकर श्रुतिप्रज्ञजीको बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें उसमें श्वपचके स्थान पर एक सच्चे वैष्णवके दर्शन हुए। उन्होंने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। थोड़ी देर बाद जब उस श्वपचको अपनी स्थितिका ज्ञान हुआ, तो उसे अत्यन्त पश्चात्ताप होने लगा। उसे लगा कि इस परम अपावन श्वपच शरीरसे मैंने इन महापुरुषका स्पर्श कर लिया, मेरी तो छाया भी इनपर नहीं पड़नी चाहिये थी—यह सोचकर वह अपने-आपको धिक्कारता हुआ श्रुतिप्रज्ञजी महाराजसे बार-बार क्षमायाचना करने लगा। श्रुतिप्रज्ञजी उसके इस भावसे और भी द्रवित होकर उसके शरीरमें लगी धूलको अपने वस्त्रसे झाड़ते हुए बोले—भैया! तुम तो मुझसे भी श्रेष्ठ हो, फिर अपावन कैसे? तुमने तो पतितपावन भगवान् महाप्रभुका दर्शन कर लिया है, मैं तो अभी उनका दर्शन करने जा रहा हूँ, अतः तुम मुझसे श्रेष्ठ हो। 'महाप्रभुका थोड़ा-सा प्रसाद मुझे भी दो'—यह कहकर श्रुतिप्रज्ञजी उस श्वपचके सम्मुख हाथ फैलाकर खड़े हो गये। सच्चे सन्त तो ऊँच-नीच, जाति-पाँति, ज्ञानी-अज्ञानीके भेद-भावसे परे होते हैं, उनके लिये तो सारा जगत् 'सियाराममय' ही होता है।

उधर श्वपचको उनके आग्रहपर बहुत ही संकोच हो रहा था, वह सोच रहा था कि भला मैं अपने हाथका प्रसाद इन्हें कैसे दे दूँ? परंतु इनका प्रेमाग्रह देख उसने इन्हें वह भगवान् महाप्रभुका महाप्रसाद अर्पित कर दिया। फिर क्या था, उसे पाकर तो ये आनन्दमग्न हो नृत्य करने लगे। अत्यन्त आदरके साथ इन्होंने उस श्वपचके साथ पूरी रात्रि सत्संग किया और प्रातःकाल अत्यन्त आदरपूर्वक उसे विदाकर ये भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करने उनके धाम पधारे।

श्रीश्रुतिदेवजी

श्रीश्रुतिदेवजी महाराज आचार्य श्रीरामानुजजीके गुरुभाई थे। भगवद्विमुख जीवोंको भगवत्सम्मुख करा देना इनका जीवन-लक्ष्य था और इसी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आप प्रायः देश-देशान्तरमें भ्रमण ही किया

करते थे। वस्तुतः सन्त तो जगत्‌में जगदीशके प्रतिनिधि ही होते हैं। उनका स्वभाव अत्यन्त शान्त और सुखदायक होता है। वे मनपर विजय पाये हुए, जितेन्द्रिय और भगवद्भजनमें रत रहनेवाले होते हैं। उनका कार्य ही होता है कि वे संसारासक्त जड़ जीवोंको सचेत करके भगवान्‌की ओर लगाते हैं और इसी उद्देश्यसे जगत्‌में विचरण करते रहते हैं—

अति सीतल अति ही सुखदाई। सम दम राम भजन अधिकाई॥
जड़ जीवन कौं करै सचेता। जग महँ बिचरत है एहि हेता॥

(वैराग्य-संदीपनी ९)

श्रीश्रुतिदेवजी महाराज इसी प्रकारके सन्त थे, उन्होंने नीरस हृदयको सरस बनाया और घर-घर भक्तिका प्रचार किया।

एक बारकी बात है, भक्तिका प्रचार करते हुए आप सन्तोंकी मण्डली लिये एक ऐसे राज्यमें पहुँच गये, जहाँका राजा ईश्वर और धर्मको न माननेवाला—नास्तिक था। वहाँकी प्रजा और राजकर्मचारी भी नास्तिक ही थे। श्रीश्रुतिदेवजी महाराज सन्तोंकी मण्डली लेकर राजाके उपवनमें रुक गये। वहाँ आस-पास स्नानार्थ कोई जलस्रोत—नदी, सरोवर आदि न होनेके कारण सन्तमण्डली उपवनके कुओंसे ही जब जल लेने लगी तो वहाँके मालियों और रखवालोंने इनका अपमान किया और जल लेनेसे मना कर दिया। श्रुतिदेवजीके अनुनय करनेपर भी उन दुष्टोंने यह कहकर जल नहीं लेने दिया कि ये कुएँ उपवनके पेड़-पौधोंको सींचनेके लिये हैं, मुण्डी-वैरागियोंके नहानेके लिये नहीं। मालियोंकी इस प्रकारकी अभद्रता और हठधर्मिता देखकर श्रुतिदेवजीने सन्तोंसे कहा कि आप सब बिना स्नान किये ही भगवत्स्मरण कर लें और यहाँसे प्रस्थान करें।

श्रुतिदेवजीके साथ सन्तमण्डली भगवत्संकीर्तन करते हुए चल दी। सन्त तो जगत्‌का हित करनेवाले ही होते हैं। उनका स्वभाव कृपा करना होता है, कोप नहीं, परंतु अपने भक्तोंका इस प्रकार अपमान भक्तवत्सल भगवान्‌से सहन नहीं हुआ। सन्तोंके उपवनसे जाते ही नगरभरके कुओंका जल सूख गया। प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। राजकीय उपवनके भी कुएँ सूख गये। जलस्रोतोंके इस प्रकार अचानक सूख जानेकी सूचना जब राजाको मिली तो उन्होंने मन्त्रियोंसे इसपर विचार करनेको कहा। तभी मालियोंने आकर राजासे सन्तमण्डलीके आगमन और उनके साथ किये दुर्व्यवहारका क्षमा-प्रार्थनासहित वर्णन किया। यह सुनकर राजाकी आँखें खुल गयीं, उन्हें अपनी भूलका ज्ञान हुआ। वे त्राहि-त्राहि करते प्रजाजनों और मन्त्रियोंके सहित सन्तोंके चरणोंमें जा पड़े। श्रीश्रुतिदेवजी महाराजने उन्हें धीरज बँधाया और पुनः नगरमें आये। उनके नगरमें आते ही पुनः सभी जलस्रोत निर्मल जलसे परिपूर्ण हो गये, साथ ही वहाँके राजा और प्रजाके हृदय भी भक्तिभावसे परिपूर्ण हो गये। राजा-प्रजा सभीने श्रीश्रुतिदेवजीकी शिष्यता ग्रहण कर ली। इसी प्रकार अनेक भगवद्विमुखोंको सन्त श्रीश्रुतिदेवजीने भगवत्पथका पथिक बनाया।

श्रीश्रुतिधामजी

श्रीश्रुतिधामजी महाराज अविचल भक्ति एवं अखण्ड पाण्डित्यसे परिपूर्ण परम वैष्णव सन्त थे। आप आचार्य रामानुजजीके गुरुभाई थे और वेद-पुराण एवं इतिहासके मर्मज्ञ विद्वान् थे। भक्तिभावसमन्वित सरस कथा-प्रवचनोंके माध्यमसे जन-जनमें भक्ति-भावका प्रचार करना आपका जीवन-सिद्धान्त था। इसके लिये आप वैष्णव सन्तोंकी मण्डली लेकर सदैव विचरण किया करते थे। आप भगवद्भक्तोंको भगवान्‌का ही स्वरूप मानते थे और उनके प्रति उसी प्रकारकी आदर-बुद्धि रखते थे। वैष्णव वेषके प्रति आपकी बड़ी

ही निष्ठा थी, अतः आप सबको कंठी, माला, तिलक और छाप आदि वैष्णव चिह्नोंको धारण करनेका उपदेश करते थे। श्रीश्रुतिधामजी महाराज एक सिद्ध सन्त थे, परंतु उनकी सिद्धियाँ चमत्कार-प्रदर्शनके लिये न होकर भावुक भक्तोंको भक्तिकी ओर उन्मुख करनेके लिये होती थीं।

एक बारकी बात है, आप सन्त-मण्डलीको लेकर तीर्थराज प्रयागमें त्रिवेणी-स्नानके लिये गये थे। स्नानके बाद वहीं त्रिवेणी-तटपर ही सत्संग होने लगा। भक्तोंका एक बड़ा समाज आपके सत्संगमें जुट गया था। भगवत्कथाओंके माध्यमसे ब्रह्म-निरूपण, धर्म एवं भक्तिपर सरस प्रवचन चल रहा था। महाराजश्री प्रवचनके माध्यमसे कर्म, ज्ञान और उपासनाकी त्रिवेणीका रहस्य समझा रहे थे कि किसी श्रद्धालुने प्रश्न किया—महाराज! त्रिवेणी-संगममें गंगाजी और यमुनाजीकी श्वेत और श्याम धाराओंके तो प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं, परंतु सरस्वतीजीकी धाराके दर्शन नहीं होते, वह तो केवल कथाओंमें सुननेकी ही बात है। दूसरे कथावाचक होते तो कथा-कहानियोंके माध्यमसे श्रद्धालु श्रोताओंकी जिज्ञासाको शान्त करनेका प्रयास करते, परंतु श्रुतिधामजी महाराज तो साक्षात् भक्ति-विग्रह ही थे। उन्होंने ध्यानस्थ होकर माता गंगा, यमुना और सरस्वतीका आवाहन किया, फिर क्या था, अपने भक्तकी भावनाको साकार रूप देनेके लिये तीनों देवियोंने प्रत्यक्ष होकर अपने दिव्य स्वरूपके दर्शन भक्त-मण्डलीको कराये, तत्पश्चात् उनकी जलधाराएँ भी स्पष्ट दृष्टिगोचर हुईं। सारा त्रिवेणीतट 'त्रिवेणीजीकी जय' और 'श्रुतिधामजी महाराजकी जय' से गूँज उठा। इस प्रकार श्रुति और शास्त्रमें कही गयी बातोंकी सत्यताको श्रीश्रुतिधामजी महाराजने जन-जनके मनमें प्रतिष्ठापित किया।

श्रीश्रुतिउदधिजी

श्रीश्रुतिउदधिजी महाराज महान् त्यागी, विरक्त, वैष्णव सन्त थे। आप आचार्यश्री रामानुजजी महाराजके गुरुभाई थे। भगवद्भजन-चिन्तन करते हुए एकाकी भ्रमण करना आपका स्वभाव और भगवद्विमुखोंको भक्ति पथका पथिक बनाना जीवन-लक्ष्य था।

एक बार आप श्रीगंगाजीके दर्शन-स्नानके लिये जा रहे थे, मार्गमें एक राजाकी वाटिका पड़ती थी। शान्त, एकान्त स्थान देखकर वहाँ कुछ क्षण बैठकर आप भगवान्का ध्यान करने लगे। संयोगवश उसी रात राजाके महलमें चोरोंने सेंध लगायी थी और कुछ माल-मत्ता लेकर चम्पत हो गये थे। सुबह होनेपर जब चोरीका ज्ञान हुआ तो राजमहलमें हड़कम्प मच गया। चारों ओर सिपाही छोड़ दिये गये। उधर चोर भी डरके मारे भागे जा रहे थे, उन्हें भी पकड़े जानेपर मौतका खौफ सता रहा था। मार्गमें राजाकी वाटिकामें श्रीश्रुतिउदधिजी महाराजको ध्यानस्थ देखकर उन लोगोंने एक मणिमाला निकालकर उनके गलेमें पहना दी और चोरीका कुछ माल भी वहीं रख दिया, जिससे सिपाही और राजकर्मचारी भ्रमित हो जायँ। यह सब करके चोर वहाँसे चल दिये, उधर थोड़ी ही देरमें कुछ सिपाही और राजकर्मचारी चोरोंको खोजते हुए राजवाटिकातक आ पहुँचे। उन्हें दूरसे ही श्रीश्रुतिउदधिजीके गलेमें चमकती हुई मणिमाला दिखायी पड़ी, यह देखकर वे लोग शीघ्रतासे उनके समीप गये। वहाँ आस-पास कुछ और भी चोरीका माल पड़ा दिखायी दिया। उधर श्रीश्रुतिउदधिजी महाराज तो पूरी तरह ध्यानमग्न थे, उन्हें दीन-दुनियाकी कोई खबर ही नहीं थी। अब क्या था, अविवेकी राजकर्मचारियों और सिपाहियोंने श्रीश्रुतिउदधिजी महाराजको ही चोर समझ लिया और बाँधकर राजाके पास ले चले।

सन्त तो नित्यमुक्त होते हैं, उनके लिये इस प्रकारके लौकिक बन्धनकी भला क्या सत्ता थी, परंतु श्रुतिउदधिजी महाराजने इसे भी अपने आराध्य प्रभुकी लीला ही समझा और निश्चिन्त भावसे चल पड़े

राजाको अज्ञान और अहंकारके बन्धनसे मुक्त करने। सिपाहियोंने बरामद माल राजाके पास रखकर सारी घटना बतायी, राजा भी अविवेकी ही था, उसने बिना सोचे-विचारे श्रीश्रुतिउदधिजी महाराजको चोरीके आरोपमें कारागारमें निरुद्ध करा दिया। सन्तके लिये क्या! उनके लिये तो कुटिया और कारागारमें कोई भेद ही नहीं था, वे वहीं बैठकर भगवान्‌का ध्यान करने लगे। उन्हें इस घटनासे किसी प्रकारका खेद या रोष नहीं था, परंतु राजाका यह अन्याय सन्तोंके परम आराध्य परमात्मप्रभुसे न देखा गया। उन्होंने राजाके मस्तकमें पीड़ा उत्पन्न कर दी। राजाने अनेक प्रकारके उपचार किये, परंतु सन्त-अपमानजनित प्रभुद्वारा दण्डस्वरूप दी गयी वह पीड़ा किंचित् भी शान्त नहीं हुई। तब प्रभु-प्रेरणासे किसी मन्त्रीने राजाको सलाह दी कि 'महाराज! जिसे चोर समझकर आपने कारागारमें बन्द करा दिया है, वे कोई चोर नहीं, बल्कि परम तपस्वी भगवद्भक्त सन्त हैं। आप उन्हें तुरंत कारागारसे मुक्त कराइये।' राजाकी भी समझमें यह बात आ गयी और वह 'त्राहि माम्' करता हुआ सन्तके चरणोंमें जा पड़ा। श्रीश्रुतिउदधिजी महाराज परम सन्त थे, उन्हें कहींसे किसी भी प्रकारका राजाके प्रति क्रोध नहीं था, उन्होंने राजाके सिरपर हाथ रखा, इससे उसके न केवल मस्तककी पीड़ा शान्त हो गयी, बल्कि उसके मस्तिष्कके बन्द ज्ञान-कपाट भी खुल गये। उसने सपरिवार श्रीश्रुतिउदधिजी महाराजका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इस प्रकार श्रीश्रुतिउदधिजी महाराजने अनेक भगवद्विमुखजनोंको प्रभु-भक्तिका उपदेश दे उन्हें भगवत्सम्मुख किया और उनका परमकल्याणसाधन किया।

श्रीलालाचार्यजी

(कोउ) मालाधारी मृतक बह्यो सरिता में आयो।
दाह कृत्य ज्यों बंधु न्योति सब कुटुँब बुलायो॥
नाम सकोचहिं बिप्र तबहिं हरिपुर जन आए।
जेंवत देखे सबनि जात काहू नहिं पाए॥
लालाचारज लच्छधा प्रचुर भई महिमा जगति।
(श्री) आचारज जामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥ ३३॥

श्रीरामानुजाचार्यजीके दामाद श्रीलालाचार्यजीकी कथा सुनते ही भगवान्‌में विशेष प्रीति होती है। एक बार कोई तुलसीकण्ठी धारण किये हुए मृत शरीर नदीमें बहता हुआ आया। श्रीलालाचार्यजीने उसे निकालकर उसका अपने भाईके समान दाह-संस्कार किया। तेरहवें दिन भोजनके लिये ब्राह्मणोंको तथा कुटुम्बियोंको निमन्त्रण देकर बुलवाया। अज्ञात शवका भण्डारा जानकर ब्राह्मणलोग नाक-भौंह सिकोड़ने लगे और भोजन करने कोई नहीं आया। तब वैकुण्ठधामसे भगवान्‌के पार्षद आये, जिन्हें भोजन करते हुए तो सभी लोगोंने देखा, परंतु जाते समय वे आकाशमार्गसे चले गये। किसीको मिले नहीं, उन्हें कोई न देख पाया। इस चमत्कारसे लालाचार्यजीकी महिमा संसारमें लाखों गुना बढ़ गयी॥ ३३॥

सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराजका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

परम वैष्णव सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज आचार्य रामानुजजीके जामाता थे। वैष्णव-वेशके प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी। वे वैष्णव-वेशधारी प्रत्येक सन्तको अपना भाई मानते थे और उसका उसी प्रकार आदर-सत्कार करते थे। श्रीलालाचार्यजी महाराजके इस दिव्य भावको उनकी सहधर्मिणी तो जानती थी,

परंतु साधारण लोग भला इसे क्या समझें कि केवल तुलसीमाला धारण करनेमात्रसे ही वैष्णव ब्रह्माजीद्वारा भी पूज्य हो जाता है, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है—

मालाधारकमात्रोऽपि वैष्णवो भक्तिवर्जितः।
पूजनीयः प्रयत्नेन ब्रह्मणा किन्नु मानुषैः॥

एक दिन श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नी जल भरनेके लिये नदीतटपर गयी हुई थीं, उनके साथ उनकी कुछ सहेलियाँ भी थीं, जो श्रीलालाचार्यजीकी वैष्णवनिष्ठाके कारण उनका मजाक उड़ाया करती थीं। जिस समय वे लोग जल भर रही थीं, उसी समय किसी वैष्णव सन्तका शव बहता हुआ उधर आया, उसके शरीरपर वैष्णव चिह्न अंकित थे और वह कण्ठी-माला धारण किये हुए था। सहेलियोंने व्यंग्य करते हुए श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नीसे कहा—'इन्हें देखकर ठीकसे पहचान लो, तुम्हारे जेठ हैं या देवर!' यह कहकर खिलखिलाती हुई चल दीं। श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नीने घर आकर श्रीलालाचार्यजीसे यह बात बतायी, सुनकर श्रीलालाचार्यजी करुण क्रन्दन करने लगे। उनके मनमें ठीक वैसे ही करुण भाव उत्पन्न हुए, जैसे अपने अग्रज या अनुजके शरीर शान्त होनेपर होते हैं। अन्तमें यह सोचकर अपने मनको शान्त किया कि मेरे ये भाई भगवद्भक्त थे—वैष्णव सन्त थे, अतः इन्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हुई है। तत्पश्चात् उनका शव प्राप्तकर अन्तिम क्रिया करनेके उद्देश्यसे वे नदीके किनारे आये और विधि-विधानपूर्वक उनकी क्रिया की।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आचारज को जामात बात ताकी सुनौ नीके पायो उपदेश सन्त बन्धु कर मानिये।
कीजै कोटि गुनी प्रीति ऐपै न बनति रीति तातें इति करौ याते घटती न आनिये॥
मालाधारी साधु तन सरिता में बह्यो आयो ल्यायो घर फेरिकै विमान शव जानिये।
गावत बजावत लै नीर तीर दाह कियो हियो दुख पायो सुख पायो समाधानिये॥ ११०॥

त्रयोदशाहके दिन श्रीलालाचार्यजीने उन वैष्णव सन्तके निमित्त ब्राह्मण-भोजनका आयोजन किया और उसके हेतु स्थानीय ब्राह्मणोंको आमन्त्रण दिया, परंतु कोई भी ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन करने न आया। उन ब्राह्मणोंने आपसमें तय किया कि यह लालाचार्य पता नहीं किस जातिका शव उठा लाया और उसके त्रयोदशाहमें हम लोगोंको खिलाकर भ्रष्ट करना चाहता है, अतः इसके यहाँ किसी भी ब्राह्मणको नहीं जाना चाहिये तथा जो ब्राह्मण परिचयके आयें, उन्हें भी सब बातें बताकर रोक देना चाहिये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका इन शब्दोंमें वर्णन करते हैं—

कियो सो महोच्छौ ज्ञाति विप्रनको न्योतो दियो लियो आये नाहिं कियो शंका दुखदाइये।
भये इक ठौरे माया कीने सब बोरे कछु कहैं बात औरै मरी देह बही आइये॥
याते नहीं खात वाकी जानत न जाति पाँति बड़ौ उतपात घर ल्याइ जाइ दाहिये।
मग अवलोकि उत पर्‌यो सुनि शोक हिये जिये आइ पूछैं गुरु कैसे कै निबाहिये॥ १११॥

ब्राह्मणोंकी इस दुरभिसन्धिका ज्ञान जब लालाचार्यजीको हुआ, तो वे बहुत ही दुखी और चिन्तित हुए। उन्होंने ये सब बातें आचार्यश्री रामानुजजीसे निवेदन कीं। आचार्यश्रीने कहा कि तुम्हें इस विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वे ब्राह्मण अज्ञानी हैं और उन्हें वैष्णव-प्रसादके माहात्म्यका ज्ञान ही नहीं है। यह कहकर उन्होंने दिव्य वैष्णव पार्षदोंका आवाहन किया, वैष्णव-प्रसादकी महिमा जाननेवाले

वे दिव्य पार्षद ब्राह्मण-वेशमें उपस्थित होकर श्रीलालाचार्यजीके घरकी ओर उन्मुख हुए। उन्हें देखकर वहाँके स्थानीय ब्राह्मणोंने उन्हें रोकना चाहा, परंतु उनके दिव्य तेजसे अभिभूत होकर खड़े-के-खड़े रह गये और आपसमें विचार किया कि अभी जब ये लोग भोजन करके बाहर आयेंगे तो हम लोग इनकी हँसी उड़ायेंगे कि कहो, किसके श्राद्धके ब्राह्मण-भोजनमें आप गये थे? क्या उसके कुल-गोत्रका भी आप सबको ज्ञान है?

श्रीप्रियादासजी महाराज इस प्रसंगका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चले श्रीआचारज पै बारिज बदन देखि करि साष्टांग बात कहि सो जनाइयै।
जाओ निहशङ्क वे प्रसाद को न जानैं रङ्क जानैं जे प्रभाव आवैं वेगि सुखदाइयै॥
देखे नभ भूमि द्वार ऐहैं निरधार जन वैकुण्ठ निवासी पाँति ढिग ह्वै कै आइयै।
इन्हैं अब जान देवौ जनि कछु कहो अहो गहो करौ हाँसी जब घर जाय खाइयै॥ ११२॥

इधर ब्राह्मण लोग ऐसा सोच रहे थे, उधर ब्राह्मणवेशधारी दिव्य पार्षदोंने श्रीलालाचार्यजीके आँगनमें जाकर वैष्णव-प्रसाद पाया और पुनः आकाशमार्गसे वैकुण्ठधामके लिये प्रस्थान कर गये। ब्राह्मणोंने उन्हें जब आकाशमार्गसे जाते देखा तो उनकी आँखें खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलका बहुत पछतावा हुआ। वे लोग आकर श्रीलालाचार्यजी महाराजके चरणोंमें गिर पड़े और क्षमा माँगते हुए रोने लगे। सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज तो परम वैष्णव थे, उन्हें उन लोगोपर किंचित् रोष था ही नहीं। वे बोले—आप सब ब्राह्मण हैं, इस प्रकार कहकर मुझे लज्जित न करें। आप सबकी कृपासे मुझे आज दिव्य वैष्णव पार्षदोंके दर्शन हुए, अतः मैं तो स्वयं आपका कृतज्ञ हूँ।

ब्राह्मणोंको अब श्रीलालाचार्यजीके साधुत्व और सिद्धित्वमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह गया। उन सबने श्रीलालाचार्यजीका शिष्यत्व ग्रहण किया और वैष्णव दीक्षा प्राप्त की।

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीलालाचार्यजीकी इस वैष्णवनिष्ठाका निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आये देखि पारषद गयो गिरि भूमि सद हद करी कृपा यह जानि निज जन को।
पायो लै प्रसाद स्वाद कहि अहलाद भयो नयो लयो मोद जान्यो साँचो सन्तपन को॥
विदा ह्वै पधारे नभ मग में सिधारे विप्र देखत विचारे द्वार व्यथा भई मन को।
गयो अभिमान आनि मन्दिर मगन भये नये दृग लाज बीनि-बीनि लेत कन को॥ ११३॥
पाँइ लपटाइ अंग धूरि में लुटाय कहैं करो मनभायो और दीन बहु भाख्यो है।
कही भक्तराज तुम कृपा मैं समाज पायो गायौ जो पुराणन में रूप नैन चाख्यो है॥
छाड़ो उपहास अब करो निजदास हमैं पूजै हिये आस मन अति अभिलाख्यो है।
किये परशंस मानो हंस ये परम कोऊ ऐसे जस लाख भाँति घर घर राख्यो है॥ ११४॥

श्रीपादपद्मजी

गुरू गमन (कियो) परदेस सिष्य सुरधुनी दृढ़ाई।
एक मंजन एक पान हृदय बंदना कराई॥
गुरु गंगा में प्रबिसि सिष्य को बेगि बुलायो।
बिष्नुपदी भय जानि कमलपत्रन पर धायो॥

पाद पद्म ता दिन प्रगट, सब प्रसन्न मन परम रुचि।
श्रीमारग उपदेस कृत श्रवन सुनौ आख्यान सुचि॥ ३४॥

श्रीसम्प्रदायके अनुयायी गुरुदेवके उपदेश करनेसे गंगाजीमें उत्पन्न निष्ठाका पवित्र इतिहास सुनिये। गुरुदेव अपनी अनुपस्थितिमें अपने समान गंगाजीको माननेका उपदेश देकर चले गये। ये गुरुवत् गंगाजीकी उपासना करने लगे। अन्य कोई शिष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करते थे, कोई गंगाजलपान करते थे, परंतु पादपद्मजी हृदयसे ही गंगाजीकी वन्दना-पूजा करते थे। कभी भी गंगाजीमें स्नान, आचमन नहीं करते थे। इनके हृदयके भावको न जानकर दूसरे लोग आलोचना करते थे। बादमें गुरुदेव लौटकर आये और इनकी निष्ठाका परिचय प्रकट करनेके लिये एक दिन स्नानार्थ गंगाजीमें घुसे और पादपद्मजीको वहीं शीघ्र वस्त्र लेकर आनेको कहा। गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन और गंगामें चरणस्पर्श इन दोनों अपराधोंसे ये भयभीत हुए। भाव जानकर गंगाजीने तटसे लेकर गुरुजीके समीपतक कमलपत्र प्रकट कर दिये। उन्हींपर पैर रखते हुए ये गुरुदेवके समीप दौड़कर गये। पादपद्मजीका जो प्रभाव गुप्त था, वह उस दिन प्रकट हो गया, इस दिव्य चमत्कारको देखकर सभीके मनमें गंगाजी और पादपद्मजीमें अपार श्रद्धा हो गयी। उसी दिनसे उनका पादपद्माचार्य यह नाम पड़ गया॥ ३४॥

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने निम्न दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देवधुनी तीर सो कुटीर बहु साधु रहैं रहै गुरुभक्त एक न्यारो नहिं ह्वै सकै।
चले प्रभु गाँव जिनि तजो बलि जाँव करौ कही दाससेवा गंगा में ही कैसे छ्वै सकै॥
क्रिया सब कूप करै 'बिष्णुपदी' ध्यान धरै रोष भरै सन्त श्रेणी भाव नहीं भ्वै सकै।
आये ईश जानि दुख मानि सो बखान कियो आनि मन जानि बात अंग कैसे ध्वै सकै॥ ११५॥
चले लैके न्हान संग गंग में प्रवेश कियो रंगभरि बोले सो अँगोछा वेगि ल्याइये।
करत विचार सोच सागर न वारापार गंगा जू प्रगट कह्यो कंजन पै आइये॥
चलेई अधर पग धरैं सो मधुर जाइ प्रभु हाथ दियो लियो तीर भीर छाइये।
निकसत धाय चाय पग लपटाय गये बड़ौ परताप यह निशिदिन गाइये॥ ११६॥

सन्त श्रीपादपद्म आचार्यजी महाराजका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीपादपद्मजी श्रीसम्प्रदायके अनुयायी परम वैष्णव सन्त थे। इनकी अपने गुरु और माता गंगाजीमें अनन्य श्रद्धा थी। इनके पादपद्म नाम पड़नेकी बड़ी रोचक कथा है, जो गुरु और गंगाजीके प्रति इनकी अनन्य भक्तिको दरसाती है—

पादपद्माचार्यजी अपने सद्गुरुदेवको साक्षात् परमात्मा मानकर उनकी अत्यन्त भक्तिभावसे पूजा-सेवा किया करते थे। गुरुसेवाको छोड़कर अन्य कोई भी कार्य उनके लिये रुचिकर नहीं था। उन्हें अपने गुरुसे एक क्षण भी विलग रहना स्वीकार नहीं था। एक बार किसी कार्यवश उनके गुरुदेवको अन्यत्र किसी दूसरे ग्राममें जाना था, पादपद्माचार्यजीने गुरुदेवसे साथ ही ले चलनेकी प्रार्थना की और कहा कि बिना आपके श्रीचरणोंके दर्शनके मेरा जीवन सम्भव नहीं होगा, अतः कृपाकर मुझे आप अपनेसे अलग न कीजिये। गुरुदेवने कहा—वत्स! मेरे आश्रमपर अनेक सन्त-भक्त आते रहते हैं, उनकी सेवा करना मेरा धर्म है, यदि तुम भी मेरे साथ चले चलोगे तो आश्रम सूना हो जायगा और यहाँ आनेवाले साधु-सन्तोंको महान् कष्ट होगा। अतः तुम्हें आश्रममें रहते हुए मेरे इस दायित्वकी पूर्ति करनी चाहिये। वत्स! गुरुकी आज्ञा मानना गुरुकी भौतिक सेवासे भी बड़ी बात है, अतः तुम्हें यहीं रुककर मेरी आज्ञाका पालन करना चाहिये। रही

मेरे प्रति भावकी बात तो ये माता गंगाजी तो आश्रमके पास हैं ही; ये ब्रह्मद्रवरूपिणी साक्षात् परमात्मा ही हैं, अतः तुम इन्हें ही गुरु मानकर इनकी सेवा-पूजा करना। मैं कुछ ही समयमें वापस आ जाऊँगा।

पादपद्माचार्यजीने गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। वे आश्रममें आये साधु-सन्तोंकी सेवा करते और गुरु मानकर नित्य गंगाजीका पूजन करते। आश्रममें गंगाजीमें अपने शरीरका स्पर्श न कराकर बाहर कुएँ आदिपर स्नान कर लेते थे। उनके इस दिव्य भावको माता गंगाजी और उनके गुरुदेव ही जान सकते थे, अन्य आश्रमवासी तो उनकी इस क्रियापर व्यंग्य ही किया करते थे।

कुछ दिनों बाद गुरुदेव पुनः आश्रममें आ गये। कुछ लोगोंने पादपद्मके उक्त आचारणकी बात उनसे शिकायतके रूपमें कही। यह सब सुनकर गुरुदेवने पादपद्मजीके दिव्य भाव और उनके प्रभावको प्रकट करनेका मन-ही-मन निर्णय लिया। एक दिन वे पादपद्मजीको लेकर गंगा-स्नान करने गये और तटपर अँगौछा रखकर स्वयं गंगाजीमें प्रवेश कर गये। डुबकी लगानेके बाद उन्होंने वहीं खड़े-खड़े पादपद्मजीसे अँगौछा माँगा। अब पादपद्मजीके लिये बड़ी विषम स्थिति हो गयी, यदि अँगौछा लेकर जाते हैं तो गंगाजीमें उनका पैर पड़ेगा और यदि नहीं जाते तो गुरु-आज्ञाकी अवहेलना होगी। उनके मनके इस ऊहापोह और अपने प्रति दिव्य भाव जानकर गंगाजी स्वयं प्रकट हो गयीं और उन्हें एक पद्मपत्र दिखाते हुए कहा कि इसपर पैर रखकर चले जाओ। श्रीपादपद्मजीने जैसे ही उस पद्मपत्रपर पैर रखा, उनके सामने एक दूसरा पद्मपत्र प्रकट हो गया। इस प्रकार वे पद्मपत्रोंपर पैर रखते हुए गुरुदेवतक पहुँच गये और उनका यह नाम पड़ा।*

श्रीरामानुजसिद्धान्तके मतावलम्बी अन्य आचार्यगण

देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानँद।
तस्य राघवानंद भए भक्तन को मानद॥
पृथ्वी पत्रावलँब करी कासी अस्थाई।
चारि बरन आश्रम सबहीको भक्ति दृढ़ाई॥
तिन के रामानँद प्रगट बिश्वमँगल जिन्ह बपु धर्यो।
(श्री) रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो॥ ३५॥

श्रीदेवाचार्यजीद्वारा श्रीरामानुजाचार्यकी पद्धति अर्थात् विशिष्टाद्वैतसम्मत श्रीसम्प्रदायका प्रताप संसारी जीवोंको भक्तिरूप जीवन देनेके लिये अमृतके समान कल्याणकारी होकर पृथ्वीपर फैला। देवगुरु बृहस्पतिके समान महामहिमावाले दूसरे आचार्य श्रीहर्यानन्दजी हुए। उनके शिष्य श्रीराघवानन्दजी हुए, जो भक्तोंको आदर देनेवाले थे, जिन्होंने भारतभूमिको अपने विजयपत्रके आश्रित कर लिया था। ये काशीमें स्थायीरूपसे निवास करते थे। इन्होंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लोगोंमें भगवान्‌की भक्तिको सुदृढ़रूपसे स्थापित किया। उनके शिष्यरूपमें भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रकट हुए, जिन्होंने संसारका कल्याण करनेके लिये ही शरीर धारण किया था॥ ३५॥

श्रीसम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

* श्रीपद्मपादाचार्य नामके एक अन्य प्रसिद्ध सन्त श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजीके चार प्रधान शिष्योंमें भी हुए हैं, जिनके जीवनमें भी ऐसी घटना घटी थी। भक्तोंके जीवनमें कभी-कभी समान घटनाएँ भी घटती हैं, अतएव भ्रमित नहीं होना चाहिये।

श्रीदेवाचार्यजी

श्रीदेवाचार्यजी महाराज भगवत्प्राप्त परम वैष्णव सिद्ध सन्त थे। श्रीमद्भागवत ग्रन्थपर आपकी अगाध श्रद्धा थी। आपके कथावाचनके समय जड़-चेतन सभी मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वैष्णव धर्मका प्रचार करना आपका जीवन-लक्ष्य था और इसकी सम्पूर्तिके लिये आप सदैव विचरण किया करते थे।

एक बारकी बात है, आप काशीपुरीकी यात्रापर थे, मार्गमें आपने एक गाँवमें विश्राम किया। गाँववाले बड़े ही श्रद्धालु थे, उन्होंने अपने बीच वैष्णव सन्तको देखा तो उनसे सत्संग—कथा-प्रवचन करनेका अनुरोध किया। फिर क्या था, सन्त श्रीदेवाचार्यजी महाराज तो यही चाहते ही थे कि कथा-प्रवचनके माध्यमसे भगवद्भक्तिका प्रचार हो। उन्होंने मन-ही-मन 'यमलार्जुन-उद्धार' की कथा सुनानेका निश्चय किया। उनका उद्देश्य था कि लोग उस परमात्माकी भक्ति करें जो चेतन क्या, जड़का भी उद्धार करनेवाला है। ऐसा निश्चयकर आचार्यजीने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें आयी ऊखल-बन्धन एवं नल-कूबरके उद्धारकी कथा सुनाना प्रारम्भ किया। अकस्मात् समीपमें ही स्थित एक प्राचीन विशाल वृक्ष भयंकर ध्वनिके साथ जड़से उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ा। सभी लोग उस महान् आश्चर्यमयी घटनाको देख भौंचक्के रह गये। उनमें आपसमें चर्चा होने लगी कि किसी प्रकारका आँधी-तूफान तो आया नहीं, फिर यह वृक्ष क्यों उखड़ पड़ा? श्रीदेवाचार्यजी इतनी बड़ी घटनाके बाद भी शान्त और स्थिरचित्त ही रहे। इतनेमें ही 'जय-जय' की गम्भीर ध्वनि करता हुआ एक दिव्य पुरुष वृक्षकी जड़से प्रकट हुआ और श्रीदेवाचार्यजीके चरणोंमें प्रणामकर कहने लगा—'हे प्रभो! आपने भगवान् श्रीहरिकी मंगलमयी कथा सुनाकर वृक्षयोनिसे मेरा उद्धार कर दिया, अब मैं श्रीभगवान्के धाम जा रहा हूँ।' यह कहकर वह दिव्य पुरुष अदृश्य हो गया और आकाशमें शंख एवं घड़ियालकी मंगलमयी ध्वनि होने लगी।

इस घटनासे उपस्थित जन-समुदायके मनमें यह विश्वास हो गया कि श्रीदेवाचार्यजी महाराज भगवत्प्राप्त सन्त हैं और उन सबने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। इस प्रकार श्रीदेवाचार्यजीने अनेक स्थानोंका भ्रमणकर लाखों लोगोंको भगवद्भक्त बनाकर उनका कल्याण किया।

श्रीहर्यानन्दजी

परम वैष्णव सन्त श्रीहर्यानन्दजी महाराज श्रीश्रियानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप सदा भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें लवलीन रहा करते थे, इसलिये आपके गुरुदेवने आपका 'हर्यानन्द'—यह नाम रख दिया था। भगवद्भजन और भगवन्नाम-स्मरण करते-करते आप स्वयं भगवत्स्वरूप हो गये थे। आपके दर्शनसे प्राणियोंको बहुत सुख मिलता था। भगवद्विमुख जीव भी आपका दर्शन करके भगवद्भक्त बन जाते थे। आपने अनेक स्थानोंपर भ्रमण करते हुए बहुत-से शिष्य बनाये और भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार किया।

एक बार आप महाप्रभु भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करने भगवद्धाम श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्रापर जा रहे थे, आपके साथ और भी बहुत-से वैष्णव भक्त थे। उस समय जगन्नाथपुरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राका महोत्सव चल रहा था। भगवान्को रथपर बैठाकर गुण्डिचा मन्दिर ले जाया जा रहा था। भगवान् जगन्नाथ महाप्रभुका विशाल गगनचुम्बी रथ भक्तोंद्वारा खींचा जा रहा था। अचानक रथ चलते-चलते रुक गया। लोगोंने बहुत प्रयास किया, परंतु रथ टस-से-मस न हुआ। सम्भवतः भगवान्को अपने भक्तकी प्रतीक्षा थी या उसकी महिमाका ख्यापन करना था। रथ आगे बढ़ सके—इसका लोगोंको कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। तभी श्रीहर्यानन्दजी भीड़से निकलकर आगे आये और सबको सुनाकर कहा कि आपलोग रथको छोड़कर दूर हट जायँ, यह रथ स्वयं चलेगा।

श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी बात सुनकर उपस्थिति जनसमुदाय रथ छोड़कर अलग हट गया। आश्चर्य! रथ अपने-आप चलने लगा और सौ कदमतक अपने-आप चलता रहा। उपस्थित जनसमुदायमें महाप्रभु जगन्नाथस्वामीके साथ-साथ श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी भी जय-जयकार होने लगी। सबने मान लिया कि ये कोई सिद्ध सन्त हैं, भगवान्ने इन्हींके लिये अपना रथ रोक रखा था। सम्पूर्ण जनसमुदाय इनका शिष्य बन गया। इसी प्रकार श्रीहर्यानन्दजी महाराजने बहुत-से लोगोंको अपना शिष्य बनाकर उन्हें भगवद्भक्तिके मार्गमें लगाया।

श्रीराघवानन्दजी

श्रीसम्प्रदायमें श्रीराघवानन्दजी महाराजको गुरुदेव वसिष्ठका अवतार माना जाता है। आप श्रीहर्यानन्दजी महाराजके कृपापात्र थे। वेद-शास्त्र-पुराणादिके प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी आप अत्यन्त अमानी थे, किसी प्रकारका अहंकार आपको छू नहीं गया था। आप भक्तिमें वर्णभेद नहीं मानते थे, अतः आपने चारों वर्णोंके लोगोंको भक्तिका उपदेश दिया।

आप एक सिद्ध सन्त थे, परंतु आपकी सिद्धियाँ चमत्कार-प्रदर्शनके लिये नहीं, अपितु जनता-जनार्दनको भगवद्भक्तिकी ओर प्रवृत्त करनेके लिये थीं। एक बारकी बात है, आपके तीन श्रद्धालु भक्तोंने एक ही दिन मन्त्र-दीक्षा देनेके लिये कहा। तीनों अलग-अलग स्थानके रहनेवाले थे। श्रीराघवानन्दजी महाराज अपने तीनों भक्तोंकी इच्छा पूरी करना चाहते थे, अतः उन्होंने योगबलसे तीन रूप बनाये और तीनों भक्तोंके यहाँ जाकर एक ही साथ एक ही समयपर मन्त्र-दीक्षा दी। आपने बहुत समयतक काशीमें निवास किया। आपको श्रीरामानन्दाचार्यजीका गुरु होनेका गौरव प्राप्त है, जिन्हें श्रीसम्प्रदायमें साक्षात् भगवान् श्रीरामका अवतार माना जाता है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामानन्दजी श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य हैं। कबीर, सेन, धन्ना, रैदास आदि इनके शिष्य थे। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ३६ में दिया गया है।

श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी और उनके द्वादश प्रधान शिष्य

अनँतानंद कबीर सुखा (सुरसुरा) पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानँद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥
औरौ सिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर।
बिस्वमँगल आधार सर्वानँद दसधा आगर॥
बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौं पार दियो।
(श्री) रामानँद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥ ३६॥

जिस प्रकार श्रीरघुनाथजीने वानरोंकी सेनाको पार करनेके लिये समुद्रपर पुल बनवाया था, उसी प्रकार श्रीरामानन्दाचार्यजीने संसारी जीवोंको भवसागरसे पार करनेके लिये अपनी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परासे सेतु-निर्माण कराया। श्रीअनन्तानन्दजी, श्रीकबीरदासजी, श्रीसुखानन्दजी, श्रीसुरसुरानन्दजी, श्रीपद्मावतीजी, श्रीनरहरियानन्दजी, श्रीपीपाजी, श्रीभावानन्दजी, श्रीरैदासजी, श्रीधन्नाजी, श्रीसेनजी और श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी—ये श्रीरामानन्दाचार्यजीके सर्वप्रधान द्वादश शिष्य थे। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से शिष्य-प्रशिष्य

एक-से-एक प्रसिद्ध एवं प्रतापी हुए। ये संसारका कल्याण करनेवाले, भक्तोंके आधार और प्रेमाभक्तिके खजाने थे। श्रीरामानन्दाचार्यजीने बहुत कालतक शरीरको धारणकर शरणागत जीवोंको संसार-सागरसे पार किया॥ ३६॥

श्रीरामानन्दजी एवं उनके द्वादश प्रधान शिष्योंके चरित इस प्रकार हैं—

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य श्रीरामानन्दजी एक उच्चकोटिके आध्यात्मिक महापुरुष थे। इनका जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुलमें माघकृष्ण सप्तमी, भृगुवार, संवत् १३२४ को प्रयागमें त्रिवेणीतटपर हुआ था। इनके पिताका नाम पुण्यसदन और माताका नाम श्रीमती सुशीला था।

आठवें वर्ष इनका उपनयन-संस्कार किया गया। उपनीत ब्रह्मचारी जब पलाशदण्ड धारणकर काशी विद्याध्ययन करने चला, तब आचार्य एवं सम्बन्धियोंके आग्रह करनेपर भी नहीं लौटा। विवश हो माता-पिता भी साथ हो लिये और बालक अपनी माताके साथ अपने मामा ओंकारेश्वरके यहाँ काशीमें ठहरकर विद्याध्ययन करता रहा। बारह वर्षकी अवस्थातक बालक ब्रह्मचारीने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन पूर्ण कर लिया।

विवाहकी चर्चा चली। बालकने इनकार कर दिया। इसके पश्चात् स्वामी राघवानन्दजीसे दीक्षा लेकर पंचगंगा घाटपर जाकर एक घाटवालेकी झोंपड़ीमें ठहरकर तप करना आरम्भ कर दिया। लोगोंने ऊँचे स्थानपर एक कुटी बनाकर तपस्वी बालकसे उसमें रहनेकी विनय की। उनकी विनय सुनकर वे उस कुटियामें आ गये और उसीमें ज्ञानार्जन और तपस्या करते रहे। उनके अलौकिक प्रभावके कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई। बड़े-बड़े साधु और विद्वान् आपके दर्शनार्थ आश्रममें आने लगे।

स्वामीजीने देश और धर्मका महान् कल्याण किया। उनका दिव्य तेज राजनीतिक क्षेत्रमें उसी प्रकार चमकता था, जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें। उस महाभयंकर कालमें आर्य-जाति और आर्य-धर्मके त्राणके साथ ही विश्वकल्याण एवं भगवद्धर्मके अभ्युत्थानके लिये जैसे शक्तिशाली और प्रभावशाली आचार्यकी आवश्यकता थी, स्वामी रामानन्दजी वैसे ही जगद्गुरु थे।

कहते हैं कि इनके सम्प्रदायकी प्रवर्तिका जगज्जननी श्रीसीताजी हैं। उन्होंने पहले हनुमान्‌जीको उपदेश दिया था और फिर उनसे संसारमें इस रहस्यका प्रकाश हुआ। इस कारण इस सम्प्रदायका नाम 'श्रीसम्प्रदाय' है और इसके मुख्य मन्त्रको रामतारक कहते हैं।

अपने परमधाम-गमनके पूर्व श्रीस्वामीजीने अपनी शिष्यमण्डलीको सम्बोधित करके कहा कि 'सब शास्त्रोंका सार भगवत्स्मरण है, जो सच्चे सन्तोंका जीवनाधार है। कल श्रीरामनवमी है। मैं अयोध्याजी जाऊँगा। परंतु मैं अकेला जाऊँगा। सब लोग यहीं रहकर उत्सव मनायें। कदाचित् मैं लौट न सकूँ, आपलोग मेरी त्रुटियों एवं अविनय आदिको क्षमा कीजियेगा। यह सुनकर सबके नेत्र सजल हो गये। दूसरे दिन स्वामीजी संवत् १५१५ में अपनी कुटीमें अन्तर्धान हो गये।

यहाँ संक्षेपमें इनकी शिष्यपरम्पराका वर्णन प्रस्तुत है—

श्रीरामानन्दजीके द्वादश शिष्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इन द्वादश भक्तोंमेंसे श्रीअनन्तानन्दजीका वर्णन छप्पय ३७ में, श्रीकबीरदासजीका छप्पय ६० में, श्रीसुखानन्दजीका छप्पय ६४ में, श्रीसुरसुरानन्दजीका छप्पय ६५ में, श्रीनरहरियानन्दजीका छप्पय ६७ में, श्रीपीपाजीका छप्पय ६१ में, श्रीरैदासजीका छप्पय ५९ में, श्रीधन्नाजीका छप्पय ६२ में, श्रीसेनजीका छप्पय ६३ में तथा श्रीसुरसुरीजीका छप्पय ६६ में आया है।

अन्य शिष्योंका वर्णन आगे इस प्रकार किया गया है—

श्रीपद्मावतीजी

श्रीपद्मावतीजी साक्षात् भगवती लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूप ही थीं, पद्मसदृश कान्ति होनेके कारण उनके माता-पिताने उनका पद्मावती यह नाम रखा था। पद्मावतीजीका जन्म त्रिपुरा नामक नगरमें एक ब्राह्मणदम्पतीके घर हुआ था। आपके पिता पण्डित श्रीप्रभाकरजी महाराज भगवती लक्ष्मीके अनन्य आराधक थे। उनकी आराधनाके फलस्वरूप साक्षात् भगवती लक्ष्मीजी ही उनकी कन्याके रूपमें अवतरित हुई थीं। पद्मावतीकी बाल-लीलाएँ अत्यन्त दिव्य थीं, उनके जन्मके साथ ही पण्डित श्रीप्रभाकरजी महाराजका घर ऋद्धि-सिद्धियोंसे परिपूर्ण हो गया। बालिका पद्मावती जब पाँच वर्षकी हुईं तो उन्होंने अपने पितासे काशी ले चलनेका आग्रह किया। उन्होंने यह भी बताया कि वे काशीमें श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके दर्शन करना चाहती हैं। माता-पिताने अपनी लाडली पुत्रीका आग्रह स्वीकारकर काशीपुरीकी यात्रा की और श्रीस्वामीजीके दर्शन किये तथा उन्हें अपनी पुत्रीकी इच्छा बतायी। श्रीस्वामीजी तो सिद्ध सन्त थे ही, उन्हें पद्मावतीके साक्षात् स्वरूपको समझनेमें देर न लगी। उन्होंने पण्डित श्रीप्रभाकरजीको पद्मावतीको लानेकी अनुमति दे दी।

पद्मावतीने श्रीस्वामीजीके दर्शनकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय उनके श्रीअंग पुलकायमान हो रहे थे। उन्होंने आचार्यश्रीसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। पद्मावतीकी विनती मानकर आचार्यश्रीने उन्हें मन्त्र-दीक्षा दी और उपासना-रहस्यका बोध कराया। पद्मावतीके कहनेपर उनके माता-पिताने भी श्रीस्वामीजीसे दीक्षा ले ली। इस प्रकार पद्मावती अपने माता-पिताके साथ काशीमें ही रहकर भगवदाराधन करने लगीं। पद्मावती जब आठ वर्षकी हुईं तो उन्होंने अन्न-जलका परित्याग कर दिया और वे महान् तपस्यामें लीन हो गयीं। उस समय उनके इस महान् तपकी चर्चा काशीमें सर्वत्र व्याप्त हो गयी। एक दिन श्रीपद्मावतीजी गुरुदेव श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीके दर्शन करने गयीं। श्रीगुरुदेवने दर्शन देनेके बाद उनसे कहा कि अब तुम्हारा तप पूर्ण हो गया है, अब तुम अपने निजधामको जाओ। यह सुनकर पद्मावतीने आचार्यश्रीके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया और उनकी स्तुतिकर सबके देखते-देखते दिव्य विमानपर बैठकर परमधामको चली गयीं।

श्रीभावानन्दजी

श्रीभावानन्दजी महाराज परम सन्त श्रीज्ञानदेवजीके पिता थे। इनके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीविट्ठलपन्त था। इनके पूर्वज मिथिलाके निवासी थे, परंतु इनके पितामह भगवान् पुण्डरीकनाथजीके बड़े भक्त थे, अतः वे पण्ढरपुरके पास ही आलन्दी नामक ग्राममें बस गये। वहीं श्रीविट्ठलपन्तजीका जन्म हुआ, जो बादमें स्वामी रामानन्दाचार्यजीसे दीक्षा लेकर भावानन्दके नामसे विख्यात हुए। आपके पितामह श्रीहरिनाथमिश्रजी और पिता श्रीरघुनाथमिश्रजी सद्गृहस्थ और परम भागवत थे, अतः वेद-शास्त्र आदिकी शिक्षा इन्हें घरपर ही प्राप्त हो गयी। इस प्रकार ज्ञान-भक्ति और वैराग्यके इनके संस्कार घरसे ही पुष्ट हो गये। कालान्तरमें आपका विवाह सिद्धोपन्त नामक एक कुलीन ब्राह्मणकी परम सुशीला कन्या रुक्मिणीसे हो गया। श्रीरुक्मिणीबाईजी परम पतिव्रता थीं, वे पतिके कार्यों, अतिथि-अभ्यागतोंके सत्कार और गृहस्थ धर्मका सम्यक् रूपसे निर्वाह करती थीं। श्रीविट्ठलपन्तजीकी साधुता देखकर एक कर्कोटकवंशीय नाग-दम्पतीने इन्हें पर्याप्त मात्रामें धन प्रदान किया, जिसका आपने साधु-सन्त-सेवामें उपयोग किया।

एक दिन आपके यहाँ एक सन्त आये, सत्संगके दौरान उन्होंने बताया कि काशीमें श्रीरामानन्दाचार्य नामके एक परम भागवत वैष्णव सन्त हैं, मैं उन्हींके दर्शन करने जा रहा हूँ। यह सुनकर आप भी काशी जानेके लिये तैयार हो गये। पत्नीको घर-गृहस्थी और अतिथि-सेवाका कार्य सौंपकर स्वयं उन सन्त भगवान्‌के साथ काशीके लिये प्रस्थान कर गये। मार्गमें उन्हें अनुभूति हुई कि मेरे साथ चल रहे सन्त साक्षात् विश्वामित्रजी हैं और इनके साथ सुकुमार अवस्थाके श्याम-गौर दो किशोर श्रीराम-लक्ष्मण हैं। फिर क्या था! वहीं इनकी भावसमाधि लग गयी। समाधिसे जाग्रत् होनेपर उन्होंने देखा कि वहाँ न तो वे सन्त हैं और न ही दोनों किशोर। फिर तो वे प्रभु-दर्शनके लिये व्याकुल हो गये और 'हा राम' 'हा रघुनाथ' कहते हुए करुण क्रन्दन करने लगे। कहते हैं कि इनकी इस प्रकारकी दशा देखकर दो बालक इनके पास आये और इन्हें खानेके लिये भगवत्प्रसाद दिया और फिर इन्हें मार्ग दिखाते हुए काशीके पंचगंगाघाटपर पहुँचा दिया, जहाँ स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीका आश्रम था। उन बालकोंके प्रति आपका श्रीराम-लक्ष्मणका भाव था, अतः उनके चले जानेपर पुनः आप विरह-व्याकुल हो गये। उसी समय श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शंखकी दिव्य ध्वनि आपके कानोंमें पड़ी, जिसे श्रवणकर आपके अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय हुआ और आपने स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण की। स्वामीजीने आपको राम-मन्त्रकी दीक्षा देकर आपका नाम भावानन्द रख दिया।

स्वामीजी अपने शिष्योंसहित धर्म-प्रचारार्थ सम्पूर्ण देशमें भ्रमण करते रहते थे। इसी क्रममें वे एक बार श्रीरामेश्वरम् धामकी यात्रापर निकले थे। संयोगसे एक दिन उन्होंने आलन्दी ग्राममें विश्राम किया। यह वही ग्राम था, जहाँ भावानन्दजीका गृहस्थाश्रमका घर था। स्वामीजीका आगमन जानकर गाँवके समस्त नर-नारी उनके दर्शनके लिये आये। उनमें श्रीभावानन्दजी महाराजकी पत्नी श्रीरुक्मिणीबाई भी थीं। उन्होंने जब स्वामीजीके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया, तो स्वामीजीने उन्हें स्वाभाविक रूपसे **'पुत्रवती भव'** का आशीर्वाद दे दिया। इसपर रुक्मिणीबाईने कहा—'प्रभो! मेरे पतिदेव तो आपसे दीक्षा लेकर संन्यासी हो गये हैं, ऐसेमें आपका आशीर्वाद कैसे सफल होगा?'

स्वामी रामानन्दजी महाराज सिद्ध सन्त थे, उनकी वाणी मिथ्या नहीं हो सकती थी। उन्होंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे भविष्यकी घटनाओंको देखते हुए भावानन्दजीको आदेश दिया कि तुम पुनः गृहस्थाश्रममें लौट जाओ। मेरी आज्ञा होनेसे तुम्हारा पतन नहीं होगा और न ही तुम्हें कोई पाप लगेगा। तुम्हें तीन दिव्य पुत्रों और एक कन्यारत्नकी प्राप्ति होगी। तुम्हारे पुत्र साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अंश होंगे और पुत्री साक्षात् योगमाया होगी, अतः तुम विश्वका कल्याण करनेके लिये पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करो—यही विधि-विधान है।

श्रीभावानन्दजीने प्रभुकी इच्छा जानकर गुरुकी आज्ञासे पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। कालान्तरमें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव और सोपानदेव नामक उनके तीन पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् सन्त हुए। एक कन्या हुई, जिसका नाम मुक्ताबाई हुआ, वह भी सिद्धयोगिनी थी। इतना सब होते हुए भी वहाँके ब्राह्मणोंने श्रीभावानन्दजीके पुत्रोंका यज्ञोपवीत-संस्कार करनेसे मना कर दिया। उनका कथन था कि एक बार संन्यासी होनेके बाद पुनः गृहस्थाश्रममें लौटकर सन्तानोत्पत्ति करनेकी कोई शास्त्रीय व्यवस्था नहीं है, अतः तुम्हें प्रायश्चित्त करना होगा; तभी तुम्हारे पुत्रोंका वैदिक-संस्कार सम्भव है। प्रायश्चित्त भी कोई साधारण प्रायश्चित्त नहीं था। पति-पत्नी दोनोंको शरीर त्यागना होगा—यही प्रायश्चित्त निश्चित हुआ। श्रीभावानन्दजीने कहा—जिससे धर्मशास्त्रकी रक्षा हो, जिससे मेरे पुत्रोंका कल्याण

हो—वह मेरे लिये भी मंगलकारी है, ऐसा निश्चयकर वे रुक्मिणीबाईको साथ लेकर तीर्थराज प्रयाग चले आये और वहीं माता त्रिवेणीकी गोदमें समा गये।

श्रीअनन्तानन्दजी और उनकी शिष्यपरम्परा

जोगानंद गयेस करमचँद अल्ह पैहारी।
(सारी) रामदास श्रीरंग अवधि गुन महिमा भारी॥
तिन के नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन।
रघुबर जदुबर गाइ बिमल कीरति संच्यो धन॥
हरिभक्ति सिंधु बेला रचे पानि पद्मजा सिर दए।
अनँतानँद पद परसि कै लोकपाल से ते भए॥ ३७॥

योगानन्दजी, गयेशजी, कर्मचन्दजी, अल्हजी, पयहारीजी, (सारी) रामदासजी और श्रीरंगजी उत्तम-गुणोंकी सीमा तथा महाप्रतापी हुए। श्रीरंगजीके शिष्यके रूपमें परमप्रसन्न श्रीनरहरिजीका उदय हुआ। ये सभी निरन्तर भक्तिकी वर्षा करनेवाले मेघके समान मंगलमय शरीर धारण करनेवाले हुए। श्रीअनन्तानन्दजी एवं उनके शिष्यगणोंने श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजीका निर्मल यशोगान करके पवित्र कीर्तिरूपी धनका संग्रह किया। श्रीअनन्तानन्दजी भगवद्भक्तिरूपी समुद्रकी मर्यादा थे। पद्मजा श्रीजानकीजीने आपके सिरपर अपना वरदहस्तकमल रखकर आशीर्वाद दिया। श्रीस्वामी अनन्तानन्दाचार्यजीके पूज्य श्रीचरण-कमलोंका स्पर्श करके उनके ये शिष्यगण लोकपालोंके समान भक्तजनोंका पालन करनेवाले हुए॥ ३७॥

यहाँ श्रीअनन्तानन्दजी तथा उनके शिष्योंका चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है—

श्रीअनन्तानन्दजी

श्रीअनन्तानन्दजी महाराज स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। आपके गृहस्थाश्रमका नाम पं० छन्नूलाल था। आपका जन्म श्रीअयोध्याजीके समीप रामरेखा नदीके तटपर स्थित महेशपुर नामक ग्राममें हुआ था, परंतु आपकी शिक्षा-दीक्षा काशीमें हुई और आप वहीं बस गये थे। आपके पिता पं० श्रीविश्वनाथमणित्रिपाठी सनाढ्य ब्राह्मण थे, भगवान् श्रीराम और अयोध्याधामके प्रति विशेष निष्ठा होनेके कारण ये 'अवधू पण्डित' के नामसे विख्यात थे।

अवधू पण्डित भगवती सरस्वतीके बड़े भक्त थे, कहते हैं कि माता सरस्वतीजीके ही आशीर्वादसे कार्तिकपूर्णिमा, सं० १३६३ वि० को श्रीअनन्तानन्दजीका जन्म हुआ था। महापुरुषोंका जीवन बहुत ही विषम होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही भाँति आपकी भी माताका परमधामगमन आपके जन्मके ठीक बाद ही हो गया था। उसके कुछ समय बाद पिताकी भी छत्रछाया सिरसे उठ गयी। अब तो बालक छन्नू अनाथ ही हो गये, ऐसे समयमें अवधू पण्डितके यजमान ग्वालोंकी दृष्टि आपपर पड़ी। उन लोगोंने आपका लालन-पालन किया। थोड़ा बड़े होनेपर आप भी ग्वाल-बालोंके साथ वनमें गाय चराने लगे।

एक दिन आप वनमें गायें चरा रहे थे कि उसी समय आपको दिव्य वंशी-ध्वनि सुनायी पड़ी, आप उस ध्वनिसे आकर्षित होकर उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ 'सँवरू' नामक साँवला-सलोना बालक अपनी गायोंको चराते हुए वंशीवादन कर रहा था। आपकी बालक 'सँवरू' से मित्रता हो गयी। अब तो सँवरूके

साथ गायें चराना और उसका वंशीवादन सुनना आपका नित्यकार्य हो गया। आप दोनोंकी मित्रता इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि एक पलका भी विरह अच्छा नहीं लगता था। अतः आपने एक दिन अपने मित्रसे यह बात बतायी और स्वयंको भी अपने घर ले चलनेको कहा। कहनेकी बात नहीं कि आपके मित्र 'सँवरू' और कोई नहीं, अखण्डब्रह्माण्डाधिपति गोलोकाधीश्वर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही थे। उन्होंने आपसे आँखें बन्द करनेको कहा और जैसे ही आपने अपनी आँखें बन्द कीं, एक ही क्षणमें आप भगवान्‌के नित्य निवास श्रीगिरिराज गोवर्धनपर पहुँच गये। वहाँ श्रीभगवान्‌ने आपको अपनी विविध लीलाओंका दर्शन कराया, इससे इन्हें अपने ब्रह्मस्वरूपका ध्यान हुआ और आपकी भाव-समाधि लग गयी। पुनः समाधिसे जाग्रत् होनेपर आपने अपने-आपको वनमें उसी स्थानपर पाया, जहाँ आपकी सँवरूसे भेंट हुई थी। अब तो आप विरह-व्याकुल हो उठे।

इधर भगवान्‌ने पं० श्रीश्यामकिशोर नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मणको ध्यानावस्थामें आज्ञा दी कि वह आपको अपने घर लाये और लालन-पालन करे। पं० श्रीश्यामकिशोरजीको भी कोई सन्तान नहीं थी, प्रभुकी आज्ञा मान उन्होंने आपका पुत्रवत् पालन-पोषण किया और विद्याध्ययनके लिये काशी ले आये और फिर यहीं बस गये। आप भगवती सरस्वतीके वरद पुत्र थे, थोड़े ही समयमें आप सर्वशास्त्रनिष्णात होकर काशीके प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये।

एक बारकी बात है, महाशिवरात्रिको आप भगवान् विश्वनाथजीके मन्दिरमें जागरण कर रहे थे। उसी समय आपको स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी दिव्य शंख-ध्वनि सुनायी दी। उस शंख-ध्वनिसे आकृष्ट होकर आप पंचगंगाघाटस्थित स्वामी रामानन्दजीके आश्रममें आये और वहीं उसी समय उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया, फिर घर लौटकर नहीं गये। श्रीमदाचार्यचरणने आपको श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देकर 'श्रीअनन्तानन्द' नाम रख दिया।

श्रीअनन्तानन्दजी महाराज परम अमानी और अपरिग्रही वैष्णव थे। आपने अपनी समस्त सम्पत्ति घर-द्वार आदिको तृणके समान त्याग दिया और आश्रममें रहते हुए बुहारी करने लगे। साधुता सिद्धिकी कारक होती है, अनन्तानन्दजी गुरुकृपासे सिद्ध महात्मा हो गये थे। एक बार श्रीकृपाशंकरजी नामक एक सिद्धयोगी आचार्यचरण श्रीरामानन्दजी महाराजके दर्शन करने आये, उस समय आचार्यश्री समाधिस्थ थे। अनन्तानन्दजीने जब दर्शनार्थ आये योगी अतिथियोंको आकाशमें स्थित देखा तो स्वयं भी उनके स्वागतार्थ आकाशमें ही जाकर उनके लिये आसन बिछा दिया और धूपसे रक्षार्थ चँदोवा तान दिया। सिद्धलोग उनके इस अद्भुत प्रभावको देखकर विस्मित हो गये और उन्हें विश्वास हो गया कि श्रीरामानन्दजी सिद्ध सन्त हैं, जब उनके शिष्यका ऐसा प्रभाव है, तो उनकी महिमाकी क्या इयत्ता!

भगवान् श्रीकृष्णके प्रति बालपनका आपका मित्रभाव जीवनभर बना रहा और प्रभु भी आपके प्रति अपने मित्रभावका निर्वाह करते रहे। कहते हैं कि एक बार आश्रममें नित्य-भोगके लिये दूधकी आवश्यकता थी और दूध देनेवाले ग्वालेके यहाँ अशौचावस्था थी, अतः उसके यहाँका दूध स्वीकार्य नहीं हो सकता था। ऐसे समयमें आपने अपने बालसखा 'सँवरू' का दूधके लिये स्मरण किया और भगवान् भी उनके भावकी पूर्तिके लिये दूध लेकर सँवरूके रूपमें उपस्थित हो गये।

अनन्तानन्दजी अपने समयके काशीके प्रतिष्ठित विद्वान् थे, परंतु विद्याका अभिमान आपको लेशमात्र भी नहीं था। एक बार काश्मीरके एक दिग्विजयी पण्डितने आकर काशीके विद्वानोंको शास्त्रार्थकी चुनौती दी, इसपर सभी पण्डितोंने एक स्वरसे कहा कि यदि आप श्रीअनन्तानन्दजी महाराजको शास्त्रार्थमें पराजित

कर देंगे तो हम लोग अपनी हार स्वीकार कर लेंगे। श्रीअनन्तानन्दजीने कहा—भाई! हम तो साधु हैं, हमें शास्त्रार्थसे क्या काम; परंतु दिग्विजयी पण्डितकी हठधर्मिताके कारण आपने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। अन्तमें परिणाम यह हुआ कि दिग्विजयी पण्डित पराजित हो गये और श्रीअनन्तानन्दजीसे मन्त्र-दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गये।

श्रीयोगानन्दजी

परम वैष्णव सन्त और श्रीरामभक्त श्रीयोगानन्दजीके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीयज्ञेशदत्त था। आपके पिता श्रीमणिशंकरजी परम यशस्वी वैदिक ब्राह्मण और भगवान् सूर्यके भक्त थे। भगवान् सूर्यदेवके वरदानसे गुजरात प्रान्तमें सिद्धपुरमें आपका जन्म वैशाख कृष्ण ७, सं० १४५७ वि० को हुआ। चूँकि आपका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ था, अतः ज्योतिषियोंके परामर्शसे श्रीमणिशंकरजीने पुत्र यज्ञेशका एक वर्षतक मुख नहीं देखा और इस अवधिमें तीर्थयात्रा करते रहे। ***'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'*** वाली कहावत बालक यज्ञेशपर सर्वथा लागू रही। आप बचपनसे ही दीपककी लौको टकटकी लगाकर देखा करते थे, जो इनके आगे चलकर सिद्धयोगी बननेका संकेत थी। बचपनमें आपके नेत्र सदैव अर्धनिमीलितावस्थामें ही रहा करते थे, ऐसा लगता था, कि जैसे कोई योगी समाधि-अवस्थामें हो। एक दिन पासके ही बगीचेमें एक सन्त-मण्डलीका आगमन हुआ। बालक यज्ञेश भी माता-पिताके साथ सन्तोंका दर्शन करने गये। सन्तोंका दर्शन करनेके बाद यज्ञेशके नेत्र स्वाभाविक रूपसे खुलने लगे। नौ वर्षकी अवस्थामें बालक यज्ञेशका यज्ञोपवीत हुआ और वे पण्डित श्रीनाथजी महाराजकी पाठशालामें विद्याध्ययन करने लगे। बालक यज्ञेश विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी अद्भुत प्रतिभाको देखकर श्रीनाथजीने उन्हें काशी जाकर विद्याध्ययन करनेका परामर्श दिया। बालक यज्ञेशने गुरूपदेशको स्वीकारकर काशीमें पं० श्रीनारायणभट्टजीकी पाठशालामें न्याय-वेदान्तका अध्ययन करना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें आपकी गणना काशीके प्रतिष्ठित पण्डितोंमें होने लगी। इसके बाद आप योगका अभ्यास करने लगे और इस क्षेत्रमें भी आपको अद्भुत सफलता मिली और आप लम्बी अवधिकी समाधियाँ लगाने लगे। यहाँतक कि आप सत्रह महीनेतक लगातार समाधि-अवस्थामें रहे।

काशीमें ही आपका विवाह एक सुशीला ब्राह्मण-कन्यासे हो गया और आपका गृहस्थ-जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा, परंतु आपका जन्म तो धर्मप्रचार और जीवोंको भगवद्-सम्मुख करनेके लिये हुआ था, अतः गृहस्थ-जीवन अधिक समयतक न चल सका और अर्धांगिनीका परलोकगमन हो गया। इस घटनाने आपमें संसारके प्रति वैराग्यभावको जन्म दिया और आपने पत्नीकी अन्त्येष्टि क्रिया करके सब धन-सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी। अकिंचनरूपमें आप भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करने गये और वहीं आपको प्रेरणा हुई कि इसे विधिका विधान मानकर स्वीकार करो और स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण करो। श्रीयज्ञेशजी मन्दिरसे सीधे श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरणमें आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीस्वामीजीने कृपापूर्वक आपको श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और यज्ञेशदत्तके स्थानपर आपका नाम 'योगानन्द' रख दिया। श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे श्रीअनन्तानन्दजीने आपको प्रस्थानत्रयपर आनन्दभाष्यका बोध कराया।

श्रीयोगानन्दजी महाराज भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकारके अनन्य भक्त थे। श्रीरामानन्दाचार्यजीकी दिग्विजय-यात्राके समय आप ठाकुरजीका सिंहासन अपने सिरपर रखकर स्वामीजीकी पालकीके आगे-आगे उलटे पैरों चलते थे। श्रीजगन्नाथधामके चन्दन तालाबका आपने जीर्णोद्धार कराया और उसे जलपूर्ण किया। जीवनके अन्तिम समयमें आपने गंगासागर-संगमपर निवास करते हुए भक्ति-प्रचारका कार्य किया। श्रीयोगानन्दजी

साथ गायें चराना और उसका वंशीवादन सुनना आपका नित्यकार्य हो गया। आप दोनोंकी मित्रता इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि एक पलका भी विरह अच्छा नहीं लगता था। अतः आपने एक दिन अपने मित्रसे यह बात बतायी और स्वयंको भी अपने घर ले चलनेको कहा। कहनेकी बात नहीं कि आपके मित्र 'सँवरू' और कोई नहीं, अखण्डब्रह्माण्डाधिपति गोलोकाधीश्वर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही थे। उन्होंने आपसे आँखें बन्द करनेको कहा और जैसे ही आपने अपनी आँखें बन्द कीं, एक ही क्षणमें आप भगवान्के नित्य निवास श्रीगिरिराज गोवर्धनपर पहुँच गये। वहाँ श्रीभगवान्ने आपको अपनी विविध लीलाओंका दर्शन कराया, इससे इन्हें अपने ब्रह्मस्वरूपका ध्यान हुआ और आपकी भाव-समाधि लग गयी। पुनः समाधिसे जाग्रत् होनेपर आपने अपने-आपको वनमें उसी स्थानपर पाया, जहाँ आपकी सँवरूसे भेंट हुई थी। अब तो आप विरह-व्याकुल हो उठे।

इधर भगवान्ने पं० श्रीश्यामकिशोर नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मणको ध्यानावस्थामें आज्ञा दी कि वह आपको अपने घर लाये और लालन-पालन करे। पं० श्रीश्यामकिशोरजीको भी कोई सन्तान नहीं थी, प्रभुकी आज्ञा मान उन्होंने आपका पुत्रवत् पालन-पोषण किया और विद्याध्ययनके लिये काशी ले आये और फिर यहीं बस गये। आप भगवती सरस्वतीके वरद पुत्र थे, थोड़े ही समयमें आप सर्वशास्त्रनिष्णात होकर काशीके प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये।

एक बारकी बात है, महाशिवरात्रिको आप भगवान् विश्वनाथजीके मन्दिरमें जागरण कर रहे थे। उसी समय आपको स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी दिव्य शंख-ध्वनि सुनायी दी। उस शंख-ध्वनिसे आकृष्ट होकर आप पंचगंगाघाटस्थित स्वामी रामानन्दजीके आश्रममें आये और वहीं उसी समय उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया, फिर घर लौटकर नहीं गये। श्रीमदाचार्यचरणने आपको श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देकर 'श्रीअनन्तानन्द' नाम रख दिया।

श्रीअनन्तानन्दजी महाराज परम अमानी और अपरिग्रही वैष्णव थे। आपने अपनी समस्त सम्पत्ति घर-द्वार आदिको तृणके समान त्याग दिया और आश्रममें रहते हुए बुहारी करने लगे। साधुता सिद्धिकी कारक होती है, अनन्तानन्दजी गुरुकृपासे सिद्ध महात्मा हो गये थे। एक बार श्रीकृपाशंकरजी नामक एक सिद्धयोगी आचार्यचरण श्रीरामानन्दजी महाराजके दर्शन करने आये, उस समय आचार्यश्री समाधिस्थ थे। अनन्तानन्दजीने जब दर्शनार्थ आये योगी अतिथियोंको आकाशमें स्थित देखा तो स्वयं भी उनके स्वागतार्थ आकाशमें ही जाकर उनके लिये आसन बिछा दिया और धूपसे रक्षार्थ चँदोवा तान दिया। सिद्धलोग उनके इस अद्भुत प्रभावको देखकर विस्मित हो गये और उन्हें विश्वास हो गया कि श्रीरामानन्दजी सिद्ध सन्त हैं, जब उनके शिष्यका ऐसा प्रभाव है, तो उनकी महिमाकी क्या इयत्ता!

भगवान् श्रीकृष्णके प्रति बालपनका आपका मित्रभाव जीवनभर बना रहा और प्रभु भी आपके प्रति अपने मित्रभावका निर्वाह करते रहे। कहते हैं कि एक बार आश्रममें नित्य-भोगके लिये दूधकी आवश्यकता थी और दूध देनेवाले ग्वालेके यहाँ अशौचावस्था थी, अतः उसके यहाँका दूध स्वीकार्य नहीं हो सकता था। ऐसे समयमें आपने अपने बालसखा 'सँवरू' का दूधके लिये स्मरण किया और भगवान् भी उनके भावकी पूर्तिके लिये दूध लेकर सँवरूके रूपमें उपस्थित हो गये।

अनन्तानन्दजी अपने समयके काशीके प्रतिष्ठित विद्वान् थे, परंतु विद्याका अभिमान आपको लेशमात्र भी नहीं था। एक बार काश्मीरके एक दिग्विजयी पण्डितने आकर काशीके विद्वानोंको शास्त्रार्थकी चुनौती दी, इसपर सभी पण्डितोंने एक स्वरसे कहा कि यदि आप श्रीअनन्तानन्दजी महाराजको शास्त्रार्थमें पराजित

कर देंगे तो हम लोग अपनी हार स्वीकार कर लेंगे। श्रीअनन्तानन्दजीने कहा—भाई! हम तो साधु हैं, हमें शास्त्रार्थसे क्या काम; परंतु दिग्विजयी पण्डितकी हठधर्मिताके कारण आपने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। अन्तमें परिणाम यह हुआ कि दिग्विजयी पण्डित पराजित हो गये और श्रीअनन्तानन्दजीसे मन्त्र-दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गये।

श्रीयोगानन्दजी

परम वैष्णव सन्त और श्रीरामभक्त श्रीयोगानन्दजीके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीयज्ञेशदत्त था। आपके पिता श्रीमणिशंकरजी परम यशस्वी वैदिक ब्राह्मण और भगवान् सूर्यके भक्त थे। भगवान् सूर्यदेवके वरदानसे गुजरात प्रान्तमें सिद्धपुरमें आपका जन्म वैशाख कृष्ण ७, सं० १४५७ वि० को हुआ। चूँकि आपका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ था, अतः ज्योतिषियोंके परामर्शसे श्रीमणिशंकरजीने पुत्र यज्ञेशका एक वर्षतक मुख नहीं देखा और इस अवधिमें तीर्थयात्रा करते रहे। ***'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'*** वाली कहावत बालक यज्ञेशपर सर्वथा लागू रही। आप बचपनसे ही दीपककी लौको टकटकी लगाकर देखा करते थे, जो इनके आगे चलकर सिद्धयोगी बननेका संकेत थी। बचपनमें आपके नेत्र सदैव अर्धनिमीलितावस्थामें ही रहा करते थे, ऐसा लगता था, कि जैसे कोई योगी समाधि-अवस्थामें हो। एक दिन पासके ही बगीचेमें एक सन्त-मण्डलीका आगमन हुआ। बालक यज्ञेश भी माता-पिताके साथ सन्तोंका दर्शन करने गये। सन्तोंका दर्शन करनेके बाद यज्ञेशके नेत्र स्वाभाविक रूपसे खुलने लगे। नौ वर्षकी अवस्थामें बालक यज्ञेशका यज्ञोपवीत हुआ और वे पण्डित श्रीनाथजी महाराजकी पाठशालामें विद्याध्ययन करने लगे। बालक यज्ञेश विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी अद्भुत प्रतिभाको देखकर श्रीनाथजीने उन्हें काशी जाकर विद्याध्ययन करनेका परामर्श दिया। बालक यज्ञेशने गुरूपदेशको स्वीकारकर काशीमें पं० श्रीनारायणभट्टजीकी पाठशालामें न्याय-वेदान्तका अध्ययन करना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें आपकी गणना काशीके प्रतिष्ठित पण्डितोंमें होने लगी। इसके बाद आप योगका अभ्यास करने लगे और इस क्षेत्रमें भी आपको अद्भुत सफलता मिली और आप लम्बी अवधिकी समाधियाँ लगाने लगे। यहाँतक कि आप सत्रह महीनेतक लगातार समाधि-अवस्थामें रहे।

काशीमें ही आपका विवाह एक सुशीला ब्राह्मण-कन्यासे हो गया और आपका गृहस्थ-जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा, परंतु आपका जन्म तो धर्मप्रचार और जीवोंको भगवद्-सम्मुख करनेके लिये हुआ था, अतः गृहस्थ-जीवन अधिक समयतक न चल सका और अर्धांगिनीका परलोकगमन हो गया। इस घटनाने आपमें संसारके प्रति वैराग्यभावको जन्म दिया और आपने पत्नीकी अन्त्येष्टि क्रिया करके सब धन-सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी। अकिंचनरूपमें आप भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करने गये और वहीं आपको प्रेरणा हुई कि इसे विधिका विधान मानकर स्वीकार करो और स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण करो। श्रीयज्ञेशजी मन्दिरसे सीधे श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरणमें आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीस्वामीजीने कृपापूर्वक आपको श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और यज्ञेशदत्तके स्थानपर आपका नाम 'योगानन्द' रख दिया। श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे श्रीअनन्तानन्दजीने आपको प्रस्थानत्रयपर आनन्दभाष्यका बोध कराया।

श्रीयोगानन्दजी महाराज भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकारके अनन्य भक्त थे। श्रीरामानन्दाचार्यजीकी दिग्विजय-यात्राके समय आप ठाकुरजीका सिंहासन अपने सिरपर रखकर स्वामीजीकी पालकीके आगे-आगे उलटे पैरों चलते थे। श्रीजगन्नाथधामके चन्दन तालाबका आपने जीर्णोद्धार कराया और उसे जलपूर्ण किया। जीवनके अन्तिम समयमें आपने गंगासागर-संगमपर निवास करते हुए भक्ति-प्रचारका कार्य किया। श्रीयोगानन्दजी

महाराज कहा करते थे कि भक्तको पतिव्रता स्त्री और चातककी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति रखनी चाहिए।

श्रीगयेशजी

श्रीगयेशजी स्वामी रामानन्दाचार्यजीके द्वादश प्रधान शिष्योंमें एक श्रीअनन्ताचार्यजी महाराजके शिष्य थे। भगवद्भक्तिके प्रचारार्थ आप भगवान्के नाम-गुणका कीर्तन करते हुए विचरण करते रहते थे। एक बारकी बात है, आप भ्रमण करते हुए एक गाँवके निकट पहुँचे और इमलीके एक सूखे वृक्षके नीचे स्वच्छ-समतल स्थानपर बैठ गये। वहीं भगवान्का ध्यान करते हुए आपको समाधि लग गयी। उस गाँवमें एक वैष्णवद्वेषी व्यक्ति निवास करता था। उसने जब आपको देखा तो आपका उपहास करने लगा। वह उधरसे जानेवाले लोगोंसे कहता—'भाइयो! देखो, ये एक सिद्ध महात्मा बैठे हैं; ये तबतक यहाँसे नहीं उठेंगे, जबतक यह सूखा पेड़ हरा नहीं हो जायगा।'

इस प्रकार वह वैष्णवद्वेषी व्यक्ति श्रीगयेशजीकी हँसी उड़ा रहा था, परंतु गयेशजीको क्या! वे तो निर्विकारभावसे अपने इष्टदेवके स्वरूपचिन्तनमें मग्न थे, उन्हें बाह्य जगत्का ज्ञान ही कहाँ था! परंतु सर्वज्ञ परमात्मासे अपने भक्तका अपमान न देखा गया, उन्होंने श्रीगयेशजीकी महिमाका ख्यापन करनेके लिये उस सूखे इमलीके वृक्षको हरा-भरा कर दिया। फिर क्या था? अभीतक जो जन-समुदाय उनकी हँसी उड़ानेके लिये एकत्र हुआ था, वही अब उनकी जय-जयकार करने लगा।

अपने दाँवको उलटा पड़ते देख वह वैष्णवद्वेषी व्यक्ति क्रुद्ध हो गया। उसे लगा कि अब तो इस वैष्णव सन्तका प्रभाव जम जायगा। उसने अपने तान्त्रिक गुरुसे अनुमति लेकर अभिचारकर्मद्वारा श्रीगयेशजीपर मारण-प्रयोग किया। परंतु उस मूर्खको यह नहीं ज्ञात था कि सच्चे वैष्णव सन्तोंकी रक्षामें भगवान् श्रीहरिका सुदर्शन चक्र सतत नियुक्त रहता है। उस दुष्टका मारण-प्रयोग श्रीगयेशजीका तो कुछ नहीं बिगाड़ सका, परंतु उससे उलटे उसके तान्त्रिक गुरुकी ही मृत्यु हो गयी। अब तो वह बहुत ही घबड़ाया और आकर श्रीगयेशजीके चरणोंमें गिर पड़ा। श्रीगयेशजी तो सन्तहृदय थे, तुरंत ही द्रवित हो गये और उसे अभय दान देते हुए उसके गुरुको भी पुनर्जीवित कर दिया। उनके इस प्रभावको देखकर उस क्षेत्रका समस्त जन-समुदाय उनका शिष्य बन गया। इस प्रकार आप वैष्णव धर्मका प्रचार-प्रसार करते हुए सदा विचरण किया करते थे।

श्रीकर्मचन्दजी

श्रीकर्मचन्दजी अनन्तानन्दजीके शिष्य थे। आपके पिताका नाम धनचन्द था। सन्तकृपासे व्यक्तिके जीवनमें कितना परिवर्तन आ सकता है, धनचन्दजीका जीवन इसका एक अनूठा उदाहरण है। धनचन्दजी यथा नाम तथा गुण अर्थात् प्रचुर धन-सम्पत्तिके स्वामी थे। राजस्थानमें देवासा नामका एक ग्राम है, वहाँके धनी श्रेष्ठियोंमें आपकी गणना थी। आपकी धर्मपत्नी परमभगवद्भक्ता, उदारहृदया और सन्त-सेविका थीं; परंतु सन्तकृपासे पूर्व आपका जीवन पत्नीके सद्‌गुणोंसे ठीक विपरीत था। इसका एक कारण भी था कि धनचन्द पत्नीके इतने धार्मिक होनेके बाद भी सन्तान-सुखसे वंचित ही थे, अतः वे धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, सन्तसेवा और दान आदिको ढकोसला ही मानते थे। एक बार जब धनचन्दजीकी पत्नी गर्भवती थीं तो वे किसी नास्तिकके प्रभावमें आकर पत्नीसे कहने लगे कि यदि तुम्हारी संतान इस बार भी जीवित नहीं रही तो मैं तुम्हें ही मार डालूँगा, अन्यथा यह सन्त-सेवा करना छोड़ दो।

धनचन्दजीकी पत्नीको पतिके इस दुर्भावसे बहुत दुःख हुआ, परंतु उनकी सन्त-सेवामें निष्ठा और

विश्वास दृढ़ ही रहे। इस अवधिमें वे भगवान्‌से बराबर प्रार्थना करती रहीं कि प्रभु! मेरे सुखके लिये नहीं, अपितु सन्त-महिमाकी प्रतिष्ठा संसारमें बनी रहे—इस हेतु मुझे एक भक्त पुत्र प्रदान कीजिये। भगवान्‌की लीला! और बार तो पुत्र जन्म लेकर कुछ दिन जीवित रहता था, इस बार तो उसकी छठी भी न हो सकी और वह चल बसा।

धनचन्दजीकी पत्नीको पुत्र-वियोगका दुःख तो कम, पर सन्त-महिमापर प्रश्न-चिह्न लगनेका बहुत दुःख था। धनचन्द तो आगबबूला ही हो गये और पत्नीका केश पकड़कर घरसे निकालने लगे। इतनेमें ही किसी व्यक्तिने आकर कहा कि गाँवमें स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके पट्टशिष्य श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी आये हैं; वे सिद्ध सन्त हैं, उनकी कृपासे यह बालक पुनः जीवित हो सकता है, अतः आप लोगोंको इस बालकको लेकर उनकी शरणमें चलना चाहिये। इतना सुनना था कि धनचन्दकी पत्नी तत्काल श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके दर्शन करने चल दी, उसे अब भी सन्त-भगवन्तकी कृपापर पूर्ण विश्वास था। श्रीअनन्तानन्दजीके पास पहुँचकर उसने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सन्त-महिमाकी प्रत्यक्ष अनुभूति करा पतिको सद्‌बुद्धि प्रदान करनेका आग्रह किया।

श्रीअनन्तानन्दजी धनचन्दके घर आये और बालकके मुखमें चरणोदक डाला। सन्तकृपाका चमत्कार! निश्चेष्ट पड़े बालकके शरीरमें श्वास-प्रश्वासके स्पन्दन होने लगे! फिर क्या था, हर्षसे सन्त-भगवन्तका जयघोष होने लगा। धनचन्द तो इस सुखद आश्चर्यको देखकर किंकर्तव्यविमूढ़से रह गये, फिर पश्चात्तापके आँसुओंसे श्रीअनन्तानन्दजीके चरणोंका प्रक्षालन करने लगे। अनन्तानन्दजीने उन्हें उठाया और भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने बालकके गलेमें कण्ठी बाँधकर उसे भी श्रीराम नामका उपदेश दिया और उसका नाम रख दिया कर्मचन्द।

बालक कर्मचन्दमें भक्तिके संस्कार बचपनसे ही थे, बड़े होकर उन्होंने अपने पिताके कपड़ेके व्यवसायको सँभाला, पर साधु-सन्तोंके प्रति भक्ति और उदारतामें कोई कमी नहीं आयी। एक बार एक सन्त-मण्डली भगवान् अमरनाथजीके दर्शन करने जा रही थी, उन लोगोंके पास शीतनिवारणयोग्य वस्त्रोंका अभाव था। कर्मचन्दजीने दुकानसे पर्याप्त मात्रामें कम्बल निकालकर सन्त-मण्डलीको दे दिये। साधुजन आशीर्वाद देकर श्रीअमरनाथजीकी यात्रापर चल दिये। उधर इस बातकी खबर जब धनचन्दको लगी तो उन्हें लगा कि पुत्रकी यह उदारता तो मेरे व्यवसायको ही चौपट कर देगी। वे दौड़े-दौड़े सन्तोंके पास गये और उनसे कम्बल ले लिये। कर्मचन्दजीको पिताके इस व्यवहारसे बड़ा ही खेद हुआ और उन्होंने पिताको समझाते हुए कहा कि सन्तोंको कुछ देनेसे कमी नहीं आती, आपको विश्वास न हो तो आप दूकानपर चलकर स्टॉक मिला लें। धनचन्दने दूकानपर जाकर देखा तो कम्बलोंका स्टॉक पूरा था। अब उन्हें सन्तोंकी महिमा और अपनी भूलका ज्ञान हुआ, फिर उन्होंने कर्मचन्दजीके कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं किया। कर्मचन्दजीने सन्तोंसे पिताके अभद्र व्यवहारके लिये क्षमा-याचना की।

धीरे-धीरे कर्मचन्दजीकी सन्त-सेवाकी प्रवृत्ति बढ़ती ही गयी, वे सन्तोंके भोजन-वस्त्र आदिपर खुले हाथ धन खर्च करते। इससे उनकी पत्नीको चिन्ता हुई। उन्होंने कर्मचन्दजीसे कहा कि यदि आप इसी प्रकार धन खर्च करते रहेंगे तो हम लोग एक दिन भिक्षुक हो जायँगे, अतः आपको सन्त-सेवापर सीमित धन ही खर्च करना चाहिये। इसपर कर्मचन्दजीने आकाशकी ओर दृष्टि करने भगवान्‌का ध्यान किया। इतनेमें ही कर्मचन्दजीकी पत्नीने देखा बहुमूल्य मणिरत्नोंसे खचित एक पर्वताकार आकृति आकाशसे धरतीपर उतर रही है, वह आकृति आकर उनके सम्मुख स्थित हो गयी। कर्मचन्दजीने पत्नीको समझाया कि सन्त साक्षात्

भगवत्स्वरूप होते हैं, अतः उनके लिये धन खर्च करनेसे धनकी कमी नहीं हो सकती। उनके लिये धन खर्च करनेवालेको भगवान् इतना धन दे देते हैं कि वह उतना खर्च ही नहीं कर सकता। इसके बाद कर्मचन्दजीकी पत्नीको भी पतिके वचनों और सन्तोंकी महिमापर पूर्ण विश्वास हो गया और वे भी तन-मन-धनसे सन्त-सेवा करने लगीं। कर्मचन्दजीने एक पुत्रकी उत्पत्तिके बाद गृहस्थ-आश्रमका परित्याग कर दिया और श्रीअनन्तानन्दजीसे ही विरक्त दीक्षा ले ली। इनके पुत्र दिवाकर भी पिताकी ही भाँति परम भागवत हुए। श्रीकर्मचन्दजीने अपना शेष जीवन भगवत्सेवा और भगवद्भक्तिके प्रचारमें बिताया।

श्रीसारीरामदासजी

श्रीसारीरामदासजी महाराज श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और भगवद्धर्मके प्रचारार्थ तथा भगवद्-विमुखोंको भक्तिमार्गपर लानेके उद्देश्यसे निरन्तर विचरण करते रहते थे। एक बारकी बात है, आप विचरण करते हुए एक ऐसे ग्राममें पहुँच गये, जहाँके लोग वैष्णवद्वेषी और भक्तजन-विरोधी थे। श्रीरामदासजीने एक गृहस्थका द्वार खटखटाया और 'जय श्रीसीताराम'का उद्घोष किया। उनकी आवाज सुनकर गृहस्वामी बाहर निकला और उन्हें देखते ही कुवाक्यों—दुर्वचनोंकी बौछार कर दी, परंतु सन्तप्रकृति श्रीरामदासजी शान्त बने खड़े ही रहे। साधुकी साधुता भी दुष्टके क्रोधको बढ़ानेवाली ही होती है, अतः गृहस्वामी उनकी शान्ति देखकर क्रोधसे पागल हो गया और धक्के देकर उन्हें द्वारसे बाहर कर दिया। इतना ही नहीं, चेतावनी देते हुए बोला—अगर दुबारा इस गाँवमें दिखायी दिये तो तुम्हारी खैर नहीं।

श्रीरामदासजीके मनपर उसकी बातों और उसके कृत्योंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वे निर्विकार ही रहे और शान्तभावसे ग्रामसे बाहर जाकर नदीके किनारे बैठकर भगवान्‌का भजन करने लगे। सन्त तो साक्षात् करुणाविग्रह ही होते हैं, उनका कार्य ही भूले-भटके जीवोंको भगवद्सम्मुख करना होता है। श्रीरामदासजीके मनमें ग्रामवासियोंके प्रति लेशमात्र भी रोष नहीं था, वे तो अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये ही धरापर विचरण कर रहे थे। संयोगकी बात, जिस समय आप नदीके किनारे बैठे थे, उसी समय उस राज्यके राजाका राजकुमार मर गया। राजा-प्रजा सब करुण-क्रन्दन करते हुए राजकुमारके शवको लेकर दाह-संस्कार करने नदीके किनारे आये। उस करुण-क्रन्दनको सुनकर श्रीरामदासजीका सन्त-हृदय द्रवित हो गया। वे राजाके पास गये और बोले—'राजन्! यदि आप और आपकी प्रजा आजसे यह प्रतिज्ञा करें कि हम लोग साधु, ब्राह्मण, अतिथि-अभ्यागतोंकी यथाशक्ति सेवा करेंगे, भगवान्‌का भजन करेंगे, सबके प्रति सद्भाव रखेंगे, तो मैं भगवान्‌से प्रार्थना करके इस बालकको जीवन-दान दिला सकता हूँ।' भला, अन्धा क्या चाहे—दो आँखें! राजा-प्रजा सभी सन्तके चरणोंमें गिर पड़े और शपथपूर्वक प्रार्थना की कि अब हम लोग कभी भी सन्तों-भक्तोंका अपमान नहीं करेंगे और यथाशक्ति उनकी सेवा और भक्ति करेंगे। राजाने भी अपने राज्यमें धर्मप्रचार और भक्तिभावके प्रसारकी शपथ ली। श्रीरामदासजीने शालग्रामशिलापर तुलसीदल चढ़ाया और उसका पादोदक राजकुमारके मुखमें डाला। अकाल मृत्युका हरण करनेवाले उस महाप्रसादके मुखमें जाते ही राजकुमारने इस तरह आँखें खोल दीं, जैसे अभी-अभी नींद पूरी हुई हो। चारों ओर सन्त-भगवन्तकी जय-जयकार होने लगी। इसी प्रकार सन्त श्रीसारीरामदासजीने अनेक भगवद्-विमुख लोगोंको भक्तिपथका पथिक बनाया।

श्रीरंगजी

श्रीरंगजी श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके प्रधान शिष्योंमें एक थे। गृहस्थाश्रमके समय आपका निवास

द्यौसा नामक ग्राममें था, जो तत्कालीन जयपुर राज्यमें आता था। आप वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए थे। आपके यहाँ सेवाकार्य करनेके लिये एक नौकर रखा गया था, परंतु वह स्वभावसे बड़ा ही दुष्ट था। कोई भी पापकर्म उससे शेष नहीं था। कालवश मृत्युको प्राप्तकर वह यमलोक गया। वहाँ उस पापीको यमराजने दूतकार्यमें नियुक्त किया और मृत प्राणियोंके प्राणोंको लानेका कार्य सौंपा। एक बार यमराजने उसे एक बनजारेके प्राणोंका हरण करके लानेको कहा, जो कि उसी द्यौसा ग्रामका रहनेवाला था, जहाँ वह मरनेसे पहले श्रीरंगजीके यहाँ नौकरी करता था। वहाँ आनेपर वह सबसे पहले श्रीरंगजीसे मिलने गया। वे उसे देखते ही चौंक पड़े और बोले—अरे! मैंने सुना कि तू मर गया है, फिर तू यहाँ कैसे आ गया? यमदूतने कहा—मालिक! आपने ठीक ही सुना था, मैं मर चुका हूँ और अब यमदूत बन गया हूँ। यहाँ मैं बनजारेको ले जाने आया हूँ। श्रीरंगजीने कहा—अभी तो वह पूर्ण स्वस्थ है और थोड़ी देर पहले ही मेरे यहाँसे कुछ माल लादकर ले गया है, उसे तुम कैसे ले जाओगे? उसने कहा—मैं उसके बैलकी सींगपर बैठ जाऊँगा, जिससे कालप्रेरित वह बैल सींग मारकर उसका पेट फाड़ देगा। श्रीरंगजीने पूछा—क्या तुम लोग सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करते हो? यमदूत बोला—नहीं, हम लोग केवल पापियोंके साथ ही ऐसा व्यवहार करते हैं, भगवान्‌के भक्तोंकी ओर तो हम देख भी नहीं सकते, अत: मैं आपको भी यह सलाह देने आया हूँ कि जीवनके शेष भागमें आप भगवद्भक्ति कर लें। मैंने आपका नमक खाया है, अत: आपको कष्टमें पड़ते नहीं देखना चाहता हूँ। आपको यदि मेरी बातोंपर विश्वास न हो तो आप मेरे साथ बनजारेके घर चलिये। मैं केवल आपको ही दिखायी दूँगा, दूसरा कोई मुझे नहीं देख सकेगा। वहाँ मेरे बतायेके अनुसार जब सारी घटना घटे, तो मेरी बातकी सत्यता समझ लेना। हम लोग पापी प्राणियोंको इसी प्रकार ले जाते हैं और यमलोक ले जाकर उसके पापोंके अनुसार और भी नाना प्रकारके कठोर दण्ड देते हैं।

यह कहकर यमदूत बनजारेका प्राण-हरण करनेके उद्देश्यसे उसके घरकी ओर चल दिया। श्रीरंगजी भी उसके पीछे-पीछे चल दिये, वहाँ जाकर श्रीरंगजीने देखा कि बनजारा अपने बैलको खली-भूसा चला रहा है। बैल बार-बार सिर हिला रहा था, जिससे बनजारेको खली-भूसा चलानेमें असुविधा हो रही थी; अत: उसने एक हाथसे बैलको जोरसे हटाया। ठीक उसी समय यमदूत जाकर बैलकी सींगोंपर बैठ गया, फिर तो कालप्रेरित बैलने क्रोधमें भरकर सींगोंसे ऐसा प्रहार किया कि बनजारेका पेट फट गया, उसकी आँतें बाहर निकल आयीं और वह वहीं तुरंत मर गया।

श्रीरंगजीकी आँखोंके सामने घटी इस आश्चर्यमयी घटनाने उनकी आँखें खोल दीं, उन्होंने श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके चरण पकड़े और उनके उपदेशानुसार भगवद्भक्ति करने लगे। श्रीरंगजीका श्रीपीपाजीके प्रति भी बड़ा ही आदर भाव था, श्रीपीपाजीने एक मासतक उनके द्यौसा ग्राममें निवास और सत्संग किया। इनके समयमें द्यौसा ग्राम श्रीरामरंगमें रँग गया था।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

द्यौसा एक गाँव तहाँ श्रीरंग सुनाम हुतो बनिक सरावगी की कथा लै बखानिये।
रहतो गुलाम गयो धर्मराज धाम उहाँ भयो बड़ो दूत कही सुनु अरे बानिये॥
आये बनिजारे लैन देख तू दिखावै चैन बैल शृङ्ग मध्य पैठि मारे पहिचानिये।
बिनु हरि भक्ति सब जगत की यही रीति भयो हरि भक्त श्रीअनन्त पद ध्यानिये॥ ११७॥

श्रीरंगजीके पुत्रको रातमें भूत दिखायी देता था, उसके भयसे वह नित्य सूखता ही चला जाता था। श्रीरंगजीने बालकसे इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि रातमें भयंकर प्रेतके देखनेसे मैं दिन-रात चिन्तित

रहता हूँ। तब श्रीरंगजी पुत्रके सोनेके स्थानपर स्वयं सोये। रात होते ही वह प्रेत आया। श्रीरंगजी क्रोध करके उसे मारनेके लिये दौड़े। प्रेतने दैन्यतापूर्वक कहा कि आप कृपा करके मुझे इस पापयोनिसे मुक्त करके सद्गति प्रदान कीजिये। मैं जातिका सुनार हूँ, परायी स्त्रीसे पाप-सम्बन्धके कारण मैं प्रेत हो गया हूँ। आपने उद्धारका उपाय संसारमें खोजनेके बाद अब आपकी शरण ली है। प्रेतकी आर्तवाणी सुनकर श्रीरंगजीने उसे चरणामृत दिया और उसका अत्यन्त सुन्दर दिव्यरूप कर दिया। इस प्रकार श्रीरंगजीके भक्तिभावका गान किया गया है।

श्रीरंगजीकी महिमा-सम्बन्धी इस घटनाका भक्तमालके टीकाकारने इस प्रकार वर्णन किया है—

सुत को दिखाई देत भूत नित सूख्यो जात पूछें कही बात जाइ वाके ठौर सोयो है।
आयो निशि मारिबेको धायो यह रोष भर्‌यो देवोगति मोकों उन बोलिकै सुनायो है॥
जाति को सोनार परनारि लगि प्रेत भयों लयों तेरी शरण मैं ढूँढ़ि जग पायो है।
दियो चरणामृत लै कियो दिव्यरूप वाको अति ही अनूप सुनो भक्तिभाव गायो है॥ ११८॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजी

जाके सिर कर धर्‌यो तासु कर तर नहिं अड्ड्यो।
आप्यो पद निर्बान सोक निर्भय करि अड्ड्यो॥
तेजपुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरन सरोज राय राना भुवि जेता॥
दाहिमा बंस दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो।
निर्बेद अवधि कलि कृष्नदास अन परिहरि पय पान कियो॥ ३८॥

इस कराल कलिकालमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी वैराग्यकी सीमा हुए। आपने अन्नको त्यागकर केवल दुग्धपान करके भजन किया। इसीलिये आप 'पयहारी' इस नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। आपने शिष्य बनाकर जिसे अपनाया, उससे याचना नहीं की, वरन् उसे भगवत्पद—मोक्षका अधिकारी बना दिया और सांसारिक शोक-मोहसे सदाके लिये छुड़ाकर अभय कर दिया। श्रीपयहारीजी भक्तिमय तेजके समूह थे और आपमें अपार भजनका बल था। बालब्रह्मचारी एवं योगी होनेके कारण आप ऊर्ध्वरेता हो गये थे। भारतवर्षके छोटे-बड़े जितने राजा-महाराजा थे, वे सभी आपके चरणोंकी सेवा करते थे। दधीचिवंशी ब्राह्मणोंके वंशमें उदय (उत्पन्न) होकर आपने भक्तिके प्रतापसे भक्तोंके हृदयकमलोंको सुख दिया॥ ३८॥

यहाँ पयहारी श्रीकृष्णदासजीका जीवन-चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है—

जयपुरमें गलता नामक एक प्रसिद्ध स्थान है, जो गालव ऋषिका आश्रम माना जाता है। वहाँ वैष्णव सन्तोंकी गद्दी है, जो 'गालता गादी' नामसे आज भी प्रसिद्ध है और वहाँ आज भी हजारों सन्तोंकी नित्यप्रति सेवा होती रहती है। एक समय वहाँके स्वामी श्रीकृष्णदासजी नामके प्रसिद्ध सन्त थे। ये दधीचिके वंशमें उत्पन्न दाहिमा ब्राह्मण थे। इन्होंने आजीवन अन्नके स्थानपर दुग्धका ही आहार किया, जिसके कारण आपकी प्रसिद्धि पयहारी बाबाके नामसे रही।

श्रीपयहारीजी महाराज सिद्ध सन्त थे। एक बार आप विचरण करते हुए कुल्हूकी पहाड़ियोंकी ओर चले गये और वहाँ एक गुफामें बैठकर भगवद्भजन करने लगे। अब उस निर्जन पहाड़ी गुफामें दूध कहाँसे

प्राप्त होता? परंतु उन्हें भला उसकी क्या चिन्ता; चिन्ता तो उसे करनी थी, जिनका वे भजन कर रहे थे; क्योंकि अपने भक्तोंके योगक्षेमका भार तो वे ही वहन करते हैं। प्रभु-प्रेरणासे पहाड़ियोंपर चरती हुई एक ग्वालेकी गाय झुंडसे निकलकर उस पहाड़ी गुफाके पास चली आयी और उसके स्तनोंसे पय:स्रवण होने लगा। पयहारी बाबाने इसे ईश्वरकृपा मानकर अपने कमण्डलुमें दूध एकत्र कर लिया और वस्त्रपूत करके पी गये। गाय फिरसे जाकर झुंडमें शामिल हो गयी। अब तो यह नित्य प्रतिका क्रम हो गया। गाय आ जाती और बाबाजीको दूध मिल जाता। एक दिन ग्वालेने गायको गुफाकी ओर जाते देख लिया, तो वह उसके पीछे-पीछे वहाँतक चला गया। वहाँका अद्भुत दृश्य देखकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जड़वत् खड़ा रह गया, फिर पयहारी बाबाको सिद्ध सन्त समझ उनके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—बाबा! गोमाताकी कृपासे आज मुझे आपके दर्शन हो गये; आप मुझे कोई और सेवा बताइये। श्रीपयहारी बाबा उसकी साधुता और सेवा भावसे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—तुम कोई वरदान माँग लो। ग्वाला बोला—प्रभो! आपकी कृपासे मुझे दूध-पूत सब प्राप्त है; मुझे अब किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं रही। हाँ, अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे देशके राजाका राज्य फिरसे उन्हें मिल जाय। बाबा उसकी नि:स्पृहता, स्वामिभक्ति और परोपकारिता देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और कहा कि तुम अपने राजाको यहाँ बुला लाना। उन दिनों वहाँके राजा शत्रुओंद्वारा राज्य छीन लिये जाने और प्राण-संकटके कारण एक गुफामें छिपकर रह रहे थे। ग्वालेने वहाँ जाकर उनसे पयहारी बाबाके विषयमें बताया और उन्हें लिवा लाया। राजाने बाबाके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया और अपनी करुणकथा सुनायी। बाबाने राजाको **'विजयी भव'** का आशीर्वाद दिया और कहा कि इस पहाड़ीपर चढ़कर चारों ओर देखो, जहाँतक तुम्हारी दृष्टि जायगी, वहाँतकका राज्य तुम्हारा हो जायगा। राजाने बाबाकी आज्ञाका पालन किया और थोड़े ही दिनोंमें बिना किसी विशेष प्रयासके उनका खोया राज्य पुन: उन्हें प्राप्त हो गया। राज्य-प्राप्तिके बाद राजाने अपने सम्पूर्ण राज्यमें सन्त-सेवा और भगवद्भजनका आदेश लागू कर दिया। इस प्रकार श्रीपयहारी बाबाकी कृपासे कुल्हू राज्यके लोग भगवद्भक्त हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीपयहारीजीके सम्बन्धमें कई रोचक घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है—

जाके सिर कर धर्‌यो तातर न ओड्यो हाथ दीनो बड़ोबर राजा कुल्हू को जु साखिये।
परबत कन्दरामें दरशन दीयो आनि दियो भाव साधु हरि सेवा अभिलाखिये॥
गिरी जो जिलेबी थार मांझते उठाई बाल भयो हिये शाल बिन अरपित चाखिये।
लै करि खड़ग ताहि मारन उपाय कियो जियो सन्त ओट फिर मोल करि राखिये॥ ११९॥
नृप सुत भक्त बड़ो अब लौं विराजमान साधु सनमान में न दूसरो बखानिये।
संत बधू गर्भ देखि उभै पनवारे दिये कही अर्भ इष्ट मेरो ऐसी उर आनिये॥
कोऊ भेषधारी सो व्योपारी पग दासिनको कही कृपा करो कहा जानैं और प्रानिये।
ऐपै तजि देवो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु दई दाम राम मति सानिये॥ १२०॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजीने जिस किसीके सिरपर हाथ रखा, उसके हाथके नीचे अपना हाथ नहीं फैलाया, अपितु उसे बड़ा भारी-भक्तिका वरदान अवश्य दिया। कुल्हू देशका राजा इस बातका प्रमाण है। इसको आपने पर्वतकी कन्दरामें जाकर दर्शन दिया और आपकी कृपासे उसे राज्य भी प्राप्त हुआ। राजाको आपने ऐसा प्रेमभाव दिया कि उसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करनेकी अभिलाषा बनी रहती थी। एक बार पुजारी मन्दिरमें भगवान्‌का भोग लगानेके लिये जलेबियोंके थाल ले जा रहे थे, उसमेंसे एक जलेबी गिर गयी। राजाका छोटा-सा बालक

उसे उठाकर खा गया। यह देखकर राजाके मनमें बड़ा भारी दु:ख हुआ कि बिना भोग लगे ही इसने खा लिया, तुरंत हाथमें तलवार लेकर उसे मार डालनेके लिये उठा, परंतु समीपमें उपस्थित सन्तोंने उसे बचा लिया और राजासे कहा कि अब तो यह बालक हमारा हो गया। यदि आपको लेना है तो मूल्य देकर आप इसे रख लीजिये॥ ११९॥

श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि कुल्हूके राजाका यह पुत्र मेरे इस टीकाके लिखनेके समयतक विराजमान है, वह बड़ा भारी भगवद्भक्त है, साधुओंकी सेवा तथा उनका सम्मान करनेमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। एक बार अपने भण्डारेकी पंक्तिमें एक सन्तकी पत्नीको गर्भवती देखकर राजपुत्रने दो पत्तलें दीं और कहा कि गर्भस्थ बालक भक्त है और वह मेरा इष्टदेव है, मैं ऐसा मनमें मानता हूँ। इसीलिये दूसरा पत्तल दे रहा हूँ। कोई वैष्णव वेषधारी मनुष्य जूतियोंको बेंचता और गाँठता था, उसे देखकर राजपुत्रको बड़ी दया आयी और उसने उससे कहा—भगवन्! आप दूसरे लोगोंको सन्त मानकर उनकी जूतियोंकी सेवा करते हैं, पर आपके इस गुप्त भावको तुच्छ प्राणी क्या जानें। इसलिये आप इस जूती-सेवा-कार्यको छोड़ दीजिये। इस वेषको धारणकर और इस कार्यको देखकर लोगोंके मनमें कुभाव होता है। ऐसा कहकर उसे वैष्णव-सेवा एवं स्वनिर्वाहके लिये बहुत-सी खेती करनेयोग्य भूमि और धन दिया, साथ ही उसे ज्ञान-प्रकाश भी दिया, उसकी बुद्धि राममें रम गयी॥ १२०॥

आमेरके राजा पृथ्वीराजजीकी रानी भी श्रीपयहारी बाबाजीकी शिष्या थीं, कालान्तरमें राजा पृथ्वीराजने भी श्रीपयहारीजी महाराजका शिष्यत्व स्वीकारकर सम्पूर्ण आमेरको वैष्णव भक्त बना दिया।

कहते हैं कि एक बार राजा पृथ्वीराजजीने पयहारीजीसे श्रीद्वारिकाधीशजीके दर्शन करनेके लिये द्वारका चलनेकी प्रार्थना की। तब आपने राजाकी भक्ति देख अपनी योगसिद्धिसे आधी रातके समय राजमहलमें प्रकट हो राजाको वहींपर श्रीद्वारकाधीशजीके दर्शन करा दिये।

एक अन्य किंवदन्तीके अनुसार एक बार आपकी गुफाके पास एक बाघ आ गया, आपने अतिथि मानकर अपनी जंघाका माँस काटकर उसे खानेको दे दिया। बाघ तो मांस खाकर चला गया, परंतु उनके इस आतिथ्य-पालनरूप धर्मसे उनके इष्टदेव प्रभु श्रीरामजीसे न रहा गया; वे कोटि कामकमनीयरूपमें प्रकट हो गये और उनके सिरपर अपने कमल-करका स्पर्श कराया। उनके स्पर्शसे पयहारीजीका शरीर तो पहले जैसा स्वस्थ हो ही गया, उनका अन्त:करण भी प्रभु-दर्शनसे गद्गद हो गया।

श्रीपयहारीजीके शिष्यगण

कील्ह अगर केवल्ल चरन ब्रत हठी नरायन।
सूरज पुरुषा पृथू तिपुर हरि भक्ति परायन॥
पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी।
देवा हेम कल्यान गंग गंगासम नारी॥
बिष्णुदास कन्हर रँगा चाँदन सबिरि गोबिंद पर।
पैहारी परसाद तें सिष्य सबै भए पार कर॥ ३९॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजीकी कृपासे उनके सभी शिष्य जीवोंको भवसागरसे पार करनेवाले हुए—श्रीकील्हदेवजी, स्वामी श्रीअग्रदेवजी, केवलदासजी, चरणदासजी, हठीनारायणजी, सूरजदासजी, पुरुषाजी (पुरुषोत्तमदास), पृथुदासजी, त्रिपुरदासजी—ये हरिभक्तिमें रत थे। पद्मनाभजी, गोपालदासजी, टेकरामजी, टीलाजी, गदाधारी (गदाधरदासजी), देवापण्डाजी, हेमदासजी, कल्याणदासजी, गंगाजीके समान गंगाबाई, विष्णुदासजी, कान्हरदासजी, रंगारामजी, चाँदनजी और सबीरीजी—ये सभी भक्त गोविन्दपरायण थे॥ ३९॥

श्रीपयहारीजी महाराजके इन शिष्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीकील्हदेवजी

परम भागवत सिद्ध सन्त श्रीकील्हदेवजी श्रीपयहारीजी महाराजके प्रधान शिष्य और भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके अनन्य भक्त थे। आपका पावन चरित आगे छप्पय ४० पर दिया गया है।

श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)

श्रीअग्रदासजी श्रीरामोपासनामें शृंगाररसके आचार्य माने गये हैं। रसिक-महानुभावोंने आपको श्रीजानकीजीकी प्रिय सखी श्रीचन्द्रकलाजीका अवतार कहा है। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ४१ पर दिया गया है।

श्रीचरणदासजी

श्रीचरणदासजीके नामसे अनेक सन्त हुए हैं, परंतु यहाँ जिन चरणदासजीका वर्णन किया जा रहा है, वे श्रीसम्प्रदायकी आचार्य-परम्पराके विशिष्ट सन्त श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रधान शिष्योंमेंसे एक हैं। इनके माता-पिताका नाम या जन्मस्थान-तिथि आदि ज्ञात नहीं है, पर सन्तोंके इस प्रकारके भौतिक परिचयकी आवश्यकता भी नहीं होती; बल्कि उनका आध्यात्मिक परिचय ही विशेष रूपसे महत्त्वपूर्ण होता है।

श्रीचरणदासजी महाराज आध्यात्मिक ऊँचाईप्राप्त सिद्ध सन्त थे, परंतु उनकी सिद्धियाँ चमत्कार-प्रदर्शन या अहंकारके लिये नहीं होती थीं; बल्कि वे दीन-दु:खियोंकी सेवा और परोपकारके लिये होती थीं। आपकी सन्त-सेवा अद्भुत थी। आप सन्तोंको भगवान्का ही प्रतीक मानते थे और उसी भावसे उनकी सेवा करते थे। आप बिना किसी भेद-भावके सन्तमात्रका धूप-दीप-नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करते थे तथा सन्तोंकी सीथ-प्रसादी पाते थे।

एक बारकी बात है, इनके आश्रममें एक ऐसे सन्त आये, जो पैरसे चलनेमें असमर्थ थे। आप अपने स्वभाव और संस्कारवश उनकी सेवा करने लगे। इनको पूजा करनेके लिये प्रस्तुत देखकर वे सन्त महानुभाव बहुत ही संकुचित हुए और निषेध भी किया, परंतु अपनी निष्ठाके पक्के श्रीचरणदासजीने अपने नित्यके नियमानुसार विधिपूर्वक उन सन्तका पादप्रक्षालनादि करके पूजन किया। भगवान्की कृपा! श्रीचरणदासजीके स्पर्श करते ही उन सन्त महानुभावके चरणोंमें शक्ति आ गयी, उनकी चलने-सम्बन्धी असमर्थता दूर हो गयी। प्रभुकी इस कृपा और सन्त चरणदासजीके दिव्य प्रभावको देखकर आश्रमवासी धन्य-धन्य कर उठे। उन सन्त महानुभावने इसके बाद पैदल ही सभी तीर्थोंकी यात्रा करते हुए इनके सुयशका प्रचार-प्रसार किया।

श्रीहठीनारायणदासजी

सन्त श्रीहठीनारायणदासजीका बचपनका नाम नारायण था, इन्होंने अपने गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके दर्शनके लिये हठ किया था, इसीलिये इनकी निष्ठा देखकर श्रीगुरुदेवने इनका नाम हठीनारायणदास रख दिया। श्रीहठीनारायणदासजीका जन्म माघ मासकी मौनी अमावस्याको सं० १६०४ वि० में ग्राम ईंगरी जिला इटावा (उ०प्र०)-में हुआ था। आपके पिताका नाम पं० श्रीजयनारायण चतुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कहते हैं कि आपके माता-पिताको कोई संतान नहीं थी, तब उन्होंने बदरिकाश्रम जाकर कठोर तप किया, जिसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत आपपर अक्षरश: सत्य उतरी। आप बचपनसे ही अत्यन्त सौम्य और शान्त प्रकृतिके थे। घरके निकटके श्रीसीतारामजीके मन्दिरसे भगवत्प्रसाद एवं

चरणामृत लेना और भगवद्दर्शन करना आपका नित्यकार्य था। कहते हैं कि जन्मके समय आपने रोनेके स्थानपर भगवान् श्रीरामके बीजमन्त्र 'रां रां' का उच्चारण किया था। इस प्रकार बचपनसे ही आपकी सन्त-प्रकृति थी, जिसे माता-पिताकी असमय मृत्युने वैराग्यकी ओर प्रवृत्त कर दिया और आप घर-बार छोड़कर भगवान्‌के नित्यधाम श्रीवृन्दावनको चले गये।

श्रीवृन्दावनमें आपको श्रीसम्प्रदायके महान् सन्त पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजका सुयश सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और आप उससे इतना प्रभावित हुए कि उन्हें मन-ही-मन अपना गुरु मान लिया। उस समय श्रीपयहारीजी अमरनाथ गये हुए थे, अतः आप भी उनका दर्शन प्राप्त करनेके लिये श्रीअमरनाथजीकी अत्यन्त दुर्गम यात्रापर चले गये। इनका दर्शनके लिये हठ और सच्ची निष्ठा देखकर सद्गुरु श्रीपयहारीजी महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए और इनके सम्मुख प्रकट होकर इन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया।

श्रीहठीनारायणदासजी भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार करते हुए यत्र-तत्र भ्रमण करते रहते थे। इसी क्रममें एक बार आप गुजरात प्रान्तके नड़ियाद ग्राम पहुँचे, वहाँके लोगोंने आपका बड़ा स्वागत किया। उस ग्रामके पासमें ही एक तान्त्रिक रहता था, उसे आपकी बढ़ती हुई कीर्ति सहन न हुई। उसने आपको अप्रतिष्ठित करने और भगानेके लिये अनेक तन्त्र-मन्त्र किये, परंतु उनका आपपर तो कुछ प्रभाव न पड़ा; उलटे वह तान्त्रिक ही उन अभिचारकर्मोंके दुष्प्रभावकी चपेटमें आ गया। अन्तमें उसने स्वयं आकर श्रीहठीनारायणदासजीकी शरण ली और उनके सदुपदेशोंका श्रवणकर वह स्थान त्यागकर चला गया और एकान्तमें भगवद्भजन करने लगा।

एक बार आप भगवद्भक्तिका प्रचार करते पंजाब पहुँच गये। आप सुध-बुध खोकर रामप्रेममें मतवाले होकर संकीर्तन कर रहे थे, लोगोंने आपकी प्रेमोन्मत्तताकी दशाको न समझकर भँगेड़ी समझ लिया। नशा किया है क्या?—ऐसा लोगोंके पूछनेपर आप कह भी देते थे कि 'मैं नामी नशेबाज हूँ।' आपका तात्पर्य होता था कि मैं नामामृतका पानकर उसके नशेमें उन्मत्त रहता हूँ, जबकि लोग उसका उलटा अर्थ ले लेते थे और आपको अत्यधिक नशा करनेवाला समझते थे।

कहते हैं कि आपके संकीर्तनमें इतनी दिव्यता होती थी कि चेतन मनुष्यकी क्या बात, जड़ वृक्ष भी झूमने लगते थे। धीरे-धीरे आपकी प्रसिद्धि वहाँके राजाके कानोंमें भी पहुँची। लोगोंके द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि राज्यमें एक सिद्ध महात्मा आये हैं। उन्होंने दरबारमें बुलाकर इनका बड़ा सत्कार किया, परंतु इनकी सिद्धिकी परीक्षाके लिये इनके भोजनमें तीव्र विष मिलवा दिया। सन्तजन भोजन करनेसे पहले उसे भगवान् श्रीहरिको समर्पित करते हैं, तत्पश्चात् उसे प्रसादरूपमें ग्रहण करते हैं। श्रीहठीजीने भी उस भोजनको प्रभुप्रसादके रूपमें ही ग्रहण किया और प्रभुकृपासे उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर राजा अत्यन्त लज्जित हुए और इनके चरणोंमें पड़कर अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना की। सन्तोंके हृदयमें तो क्रोधके लिये कोई स्थान होता ही नहीं, श्रीहठीजीने उन्हें सदुपदेश देकर भक्त बना दिया। राजाके भक्त हो जानेसे राजाकी प्रजा भी भगवद्भक्त हो गयी। इस प्रकार विमुख जीवोंको भगवत्सम्मुख करते और भगवद्भक्तिका प्रचार करते हुए श्रीहठीनारायणदासजी ने श्रावण शुक्ल ७, सं० १७०३ वि० को भगवद्धामकी प्राप्ति की।

श्रीसूरजदासजी

श्रीसूरजदासजी सन्तशिरोमणि श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके षोडश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। आप परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे तथा आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते

थे। इस प्रकार कभी-कभी आपको कई दिन बिना अन्न-जल ग्रहण किये ही बीत जाते, परंतु अपनी नियम-निष्ठामें किंचित् भी ढील देना आपको स्वीकार्य नहीं था।

एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।

सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्यभगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं।

समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने पूजा प्रारम्भ की, फिर सूर्यदेवका दर्शन करनेके लिये जैसे ही दृष्टि ऊपर गगनमण्डलकी ओर उठायी कि मेघाच्छन्न आकाश अनन्तप्रकाशराशिसे परिपूरित हो उठा, भगवान् भास्कर कुहरावरणका विदारण करते हुए प्रकट हो गये। अनन्य श्रद्धाभावसे सूरजदासजीने उस सूर्यमण्डलके मध्यमें अपने आराध्य श्रीसीतारामजीके दर्शन किये। सन्त-मण्डली भक्त और भगवान्की जय-जयकार करने लगी। भक्तका प्रेम और भगवान्की कृपा देख सब लोग धन्य हो गये। ऐसे तेजस्वी और निष्ठावान् सन्त थे श्रीसूरजदासजी! उन्होंने अपनी इस नियम-निष्ठाका आजीवन निर्वाह किया और अन्तमें श्रीसीतारामजीके दिव्य धामको चले गये।

श्रीटीलाजी

श्रीटीलाजी महाराजका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १५१५ वि० को राजस्थानके किशनगढ़ राज्यान्तर्गत सलेमाबादमें हुआ था। आपके पिता श्रीहररिामजी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित और माता श्रीमती शीलादेवी साधु-सन्तसेवी सद्गृहिणी थीं। कहते हैं कि आपके माता-पिताको बहुत समयतक कोई संतान नहीं थी, बादमें आबूराजनिवासी एक सिद्ध सन्तके आशीर्वादसे आपका जन्म हुआ था। सन्तकृपा, तीर्थक्षेत्रका प्रभाव, पूर्वजन्मके संस्कारों और माता-पिताकी भगवद्भक्तिके सम्मिलित प्रभावसे बालक टीलाजीमें बचपनसे ही भक्तिके दिव्य संस्कार उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और शास्त्रानुशीलनके साथ-साथ बढ़ते ही रहे। आपके पिता पं० श्रीहररिामजी भक्त होनेके साथ-साथ विद्वान् भी थे, वे आपको बचपनसे ही पुराणोंकी कहानियाँ और भगवच्चरित्र सुनाया करते थे, जिससे आपमें भगवद्भक्तिका संस्कार दृढ़ हुआ। बचपनमें ही आप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपकी इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम रख दिया।

एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक टीलाकी भक्ति और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमति दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त हो गये।

भक्तवत्सल भगवान्ने टीलाजीसे वर माँगनेको कहा। इसपर टीलाजीने कहा—प्रभो! आपका दर्शन प्राप्तकर मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, अब मेरा कोई भी मनोरथ शेष नहीं रहा; फिर भी यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो यही वरदान दीजिये कि किसी सद्गुरुसे मुझे वैष्णवी दीक्षा प्राप्त हो जाय। श्रीभगवान् बोले—वत्स! जिस प्रकार शिष्यको सद्गुरुकी खोज रहती है, उसी प्रकार सद्गुरुको भी परमयोग्य शिष्यकी खोज रहती है। मेरी कृपासे तुम्हें घर बैठे ही परम सन्त सिद्ध सद्गुरुदेवकी प्राप्ति हो जायगी। यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और टीलाजी उसी भुवनमोहिनी छविका निरन्तर ध्यान करते हुए भगवदाज्ञाके अनुसार घरपर ही भजन-भाव करने लगे। प्रभुकृपासे थोड़े दिनोंमें ही इनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी। अनेक सिद्ध-महात्मा आपके दर्शनहेतु आने लगे। अनेक वयोवृद्ध सन्तोंने इनकी विद्वत्ता और सिद्धता देखकर इन्हें दीक्षा लेनेको कहा, परंतु ये विनम्रतापूर्वक कहते कि जिस दिन भगवान्की इच्छा होगी, उस दिन वे दीक्षा भी दे देंगे। कुछ लोग जब अधिक हठ करते तो आप विनयपूर्वक कह देते कि आप ही कृपाकर मेरे कण्ठी बाँध दीजिये। पर जब कोई आपको कण्ठी बाँधने लगता, तो आप अपने सिद्धिबलसे आसनसहित ऊँचे उठ जाते और बाँधनेवालेका हाथ आपके गलेतक पहुँच ही न पाता—ऐसा करनेके पीछे आपका उद्देश्य सिद्धिबल दिखाना या सन्तोंकी अवमानना करना नहीं, अपितु सच्चे सद्गुरुकी खोज करना ही था।

इस प्रकार जब बहुतसे सन्त प्रयास करनेपर भी श्रीटीलाजीके गलेमें कण्ठी न बाँध सके तो सबने जाकर श्रीपयहारीजी महाराजसे सब बातें कहीं और टीलाजीको शिष्य बनानेका निवेदन किया। पयहारीजीने प्रथम तो यह कहकर इनकार कर दिया कि वे सन्तोंको अपना सिद्धिबल दिखाते हैं; परंतु बादमें सबके आग्रहपर कण्ठी बाँधना स्वीकार कर लिया। श्रीपयहारीजी महाराज भी जब कण्ठी बाँधने लगे तो टीलाजी पूर्वकी भाँति आसनसहित ऊपर उठ गये, परंतु पयहारीजी तो ठहरे सिद्ध सन्त; उन्होंने अपना हाथ बढ़ाया तो वह बढ़ता ही गया और अन्तमें उन्होंने टीलाजीके गलेमें कण्ठी बाँध ही दी। इस प्रकार टीलाजीको उनके सद्गुरु मिल गये और पयहारीजी महाराजको टीलाजीके रूपमें एक योग्य शिष्य प्राप्त हो गया। श्रीपयहारीजी महाराजने उन्हें उपासनाका रहस्य समझाया और वैष्णव मन्त्रकी दीक्षा देकर उनका नाम श्रीसाकेतनिवासाचार्य रख दिया।

श्रीसाकेतनिवासाचार्यजीने बहुत दिनोंतक गलतागादी (जयपुर)-में रहते हुए श्रीपयहारीजी महाराजकी सेवा की, फिर उनकी आज्ञा लेकर भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंका परिभ्रमण एवं भगवद्भक्तिका प्रचार किया। तत्पश्चात् जयपुरराज्यान्तर्गत ही अरविया ग्राममें आचार्यपीठका निर्माण कराकर वैष्णवधर्मका प्रचार-प्रसार करते रहे। चैत्रशुक्लपूर्णिमा सं० १६४२ वि० को श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी महाराजने अपने आराध्य श्रीसीतारामजीके श्रीसाकेतधाममें निवास प्राप्त किया।

श्रीगंगादेवीजी

श्रीभगवान्की भक्तिमें सबका अधिकार है, श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीराम कहते हैं—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

अर्थात् स्त्री-पुरुष, नपुंसक या कोई भी जड़-चेतनप्राणी कपट भावको सब प्रकारसे छोड़कर जो मुझे भजता है, वही मेरे लिये परम प्रिय है।

स्वामी रामानन्दजी महाराजने कलिमलग्रसित जीवोंके कल्याणके लिये जो सम्प्रदाय चलाया, उसमें दीक्षित होनेका सबको अधिकार था। उनके सम्प्रदायमें वर्ण-लिंग-सम्बन्धी कोई भेद नहीं था। इस सम्प्रदायमें

जहाँ चारों वर्णोंको दीक्षा प्राप्त हुई, वहीं पुरुषोंके साथ-साथ स्त्रियाँ भी दीक्षित हुईं। श्रीपद्मावतीजी श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शिष्या थीं, उसी प्रकार श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजीकी शिष्या थीं गंगादेवी।

श्रीगंगादेवी परम भगवद्भक्ता थीं, भगवत्प्रसाद और चरणामृतमें इनकी बड़ी निष्ठा थी। कहते हैं कि इनके भाईको एक पिशाची लग गयी थी, जिससे वह दिनोंदिन क्षीण होता जा रहा था। उसे हटानेके लिये अनेक यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र किये गये; पर सब व्यर्थ रहे। वह पिशाची इनके भाईको किसी प्रकारसे छोड़नेको तैयार नहीं थी। जब इन्हें यह बात ज्ञात हुई तो इन्होंने विश्वासपूर्वक भगवच्चरणामृत लाकर भाईके ऊपर छिड़का। उसे छिड़कते ही पिशाचिनी तुरंत वहीं भाईको छोड़कर अलग हो गयी और अपने भी उद्धारकी प्रार्थना करने लगी। तब गंगादेवीजीने दयाकर उस पिशाचिनीका भी भगवच्चरणामृतसे उद्धार कर दिया।

श्रीविष्णुदासजी

श्रीविष्णुदासजी श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रधान शिष्योंमें एक थे। आप एक सिद्ध सन्त थे और भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार करने एवं भगवद्विमुखोंको भगवत्सम्मुख करनेके लिये सदा भ्रमण करते रहते थे। आपकी भगवच्चरणामृतमें बड़ी ही निष्ठा थी। आप भगवच्चरणामृतमें भिगोकर बनी हुई रजकी गुटिका सदा साथ रखते थे और उसके द्वारा भूत-प्रेत-अभिचारकर्म आदिसे ग्रस्त मनुष्योंको मुक्त करते थे।

एक बारकी बात है, आप भ्रमण करते हुए किसी ऐसे ग्राममें पहुँचे, जो भूत-प्रेतके उपद्रवोंसे ग्रस्त था। आपने ग्रामवासियोंकी प्रेतबाधा दूरकर उन्हें शान्ति प्रदान की तथा उस प्रेतको भी श्रीराम-मन्त्र सुनाकर प्रेतयोनिसे मुक्त किया। उनके इस प्रभावको देखकर ग्रामवासी उनके भक्त हो गये। श्रीविष्णुदासजीने उन्हें अपने सदुपदेशोंसे भगवत्पथका पथिक बना दिया।

श्रीरंगदासजी (श्रीरंगारामजी)

श्रीरंगदासजी महाराज श्रीपयहारीजीके प्रधान शिष्य थे। आपकी श्रीगुरुचरणकमलोंमें बड़ी ही निष्ठा थी। आपके जीवनमें गुरुका स्थान भगवान्‌से भी बढ़कर था। यहाँतक कि आप सिंहासनपर भगवद्विग्रह न रखकर उसके स्थानपर गुरुपादुका रखकर उसका ही पूजन करते थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और अकिंचनवृत्तिसे रहते थे।

एक बारकी बात है, आपकी कुटियामें चोरी करनेके उद्देश्यसे एक चोर घुस गया। उसे और कुछ तो मिला नहीं, सिंहासनपर रखी हुई चरण-पादुकाएँ ही दिखायी दीं और वह उन्हें ही लेकर चल दिया। वह कुछ दूर ही गया होगा कि उसका चित्त व्याकुल हो गया, उसे कहीं मार्ग ही सूझ नहीं रहा था। वह घबराकर पुनः श्रीरंगदासजीकी कुटीपर लौट आया और पादुकाओंको वापसकर सन्तके चरणोंमें गिर पड़ा तथा बार-बार क्षमा-प्रार्थना करने लगा। श्रीरंगदासजीने उसे क्षमाकर भगवद्भक्तिका सदुपदेश दे भक्त बना दिया। इस प्रकार सन्तकृपासे एक चोरका भी जीवन धन्य हो गया। इस प्रकारके अनेक भगवद्विमुख जीवोंका सन्त श्रीरंगदासजीने उद्धार किया।

श्रीकील्हदेवजी

राम चरन चिंतवनि रहति निसि दिन लौ लागी।
सर्ब भूत सिर नमित सूर भजनानँद भागी॥
सांख्य जोग मत सुदृढ़ किए अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरंध्र करि गौन भए हरि तन करनी बल॥

सुमेरदेव सुत जग बिदित भू बिस्तार्यो बिमल जस।
गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस॥ ४०॥

जिस प्रकार गंगाजीके पुत्र श्रीभीष्म पितामहजीको मृत्युने नष्ट नहीं किया, उसी प्रकार स्वामी श्रीकील्हदेवजी भी साधारण जीवोंकी तरह मृत्युके वशमें नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपनी इच्छासे प्राणोंका त्याग किया। कारण कि आपकी चित्तवृत्ति दिन-रात श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका ध्यान करनेमें लगी रहती थी। आप मायाके षड्विकारोंपर विजय प्राप्त करनेवाले महान् शूरवीर थे। सदा भगवद्भजनके आनन्दमें मग्न रहते थे। सभी प्राणी आपको देखते ही नतमस्तक हो जाते थे और आप सभी प्राणियोंमें अपने इष्टदेवको देखकर उन्हें सिर झुकाते थे। सांख्यशास्त्र तथा योगका आपको सुदृढ़ ज्ञान था और योगकी क्रियाओंका आपको इतना सुन्दर अनुभव था कि जैसे हाथमें रखे आँवलेका होता है। ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्राणोंको निकालकर आपने शरीरका त्याग किया और अपने योगाभ्यासके बलसे भगवद्रूप पार्षदत्व प्राप्त किया। इस प्रकार श्रीसुमेरुदेवजीके सुपुत्र श्रीकील्हदेवजीने अपने पवित्र यशको पृथ्वीपर फैलाया, आप विश्वविख्यात सन्त हुए॥ ४०॥

श्रीकील्हदेवजी महाराजका जीवन-चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीकील्हदेवजी महाराज श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीपयहारीजीके परमधामगमनके बाद गलतागादी (जयपुर)-के महन्त आप ही हुए। आप दिव्यदृष्टिसम्पन्न परम वैष्णव सिद्ध सन्त थे। कहते हैं कि भक्तमाल ग्रन्थके रचनाकार श्रीनाभादासजी महाराजके नेत्र क्या, नेत्रके चिह्न भी नहीं थे, श्रीकील्हदेवजीने अपने कमण्डलुके जलसे उनके नेत्र-स्थानको धुला, जिससे उनके बाह्य चक्षु प्रकट हो गये।

कहते हैं कि एक बार श्रीकील्हदेवजी मथुरापुरी आये हुए थे और श्रीयमुनाजीमें स्नानकर एकान्तमें समाधिस्थ हो भगवद्ध्यान करने लगे। उसी समय बादशाहके दिल्लीसे मथुरा-आगमनकी सूचना मिली। सेना तुरंत व्यवस्थामें लग गयी, रास्ता साफ किया जाने लगा, सब लोग तो हट गये, परंतु ध्यानावस्थित होनेके कारण श्रीकील्हदेवजी महाराजको बाह्य जगत्की कुछ खबर ही नहीं थी; वे समाधिमें स्थिर होकर बैठे थे। किसी सिपाहीने जाकर बादशाहको बताया कि हुजूर! एक हिन्दू फकीर रास्तेमें बैठा है और हमारे शोर मचानेपर भी नहीं उठ रहा है। उसने फौरन हुक्म दिया कि उस काफिरके माथेमें लोहेकी कील ठोंक दो। हुक्म मिलते ही दुष्ट सिपाहियोंने लोहेकी एक कील लेकर कील्हजीके माथेमें ठोंकना शुरू किया। परंतु आश्चर्य! कील्हदेवजी तो वैसे ही शान्त, निर्विकार बने रहे, परंतु उनके माथेका स्पर्श करते ही वह लोहेकी कील गलकर पानी हो गयी! यह आश्चर्य देख सिपाही भागकर बादशाहके पास गये। बादशाहको भी यह विचित्र घटना सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे लगा कि मैंने बादशाहतके नशेमें चूर होकर किसी सिद्ध सन्तका अपमान कर दिया है और इसका दण्ड भी भोगना पड़ सकता है, अतः भागता हुआ जाकर श्रीकील्हदेवजी महाराजके चरणोंमें गिर पड़ा और बार-बार क्षमा माँगने लगा। थोड़ी देर बाद जब कील्हदेवजीकी समाधि टूटी और वे अन्तःजगत्से बाह्य जगत्में आये तो उन्हें इस घटनाका ज्ञान हुआ। श्रीकील्हदेवजी महाराज तो परम सन्त थे, उनके मनमें क्रोधके लिये कहीं स्थान ही नहीं था, उन्होंने बादशाहको तुरंत क्षमा कर दिया।

बादशाह यद्यपि श्रीकील्हदेवजी महाराजसे प्रभावित तो बहुत हुआ, परंतु मुसलमान मुल्ला-मौलवियोंके

निरन्तर सम्पर्कमें रहनेसे उसने हिन्दुओंका धर्म परिवर्तनकर उन्हें मुसलमान बनानेका अभियान चला रखा था। अब हिन्दुओंने मिलकर श्रीकील्हजीकी शरण ली और धर्मरक्षा करनेकी प्रार्थना की। श्रीकील्हदेवजीने सबको आश्वासन दिया और स्वयं बादशाहके दरबारमें गये। बादशाहने श्रीकील्हदेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया और आगेसे ऐसा न करनेकी शपथ ली।

श्रीकील्हदेवजी महाराज दिव्यदृष्टिसम्पन्न थे, जिस समय आपके पिता श्रीसुमेरुदेवजीका भगवद्धामगमन हुआ, उस समय आप श्रीमथुराजीमें विराजमान थे और आपके समीप ही राजा मानसिंह बैठे थे। आपने जब आकाशमार्गसे विमानस्थ पिताजीको भगवद्धाम जाते देखा तो उठकर प्रणाम किया और पिताने भी इन्हें आशीर्वाद दिया। इनके अतिरिक्त अन्य किसीको इनके पिता नहीं दिखायी दिये, इसीलिये राजा मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीकील्हजीसे पूछा कि प्रभो! आप क्यों उठे और हाथ जोड़कर किसे प्रणाम किया? श्रीकील्हजीने उन्हें पिताजीके परमधामगमनकी बात बतायी। मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ; क्योंकि श्रीकील्हदेवजीके पिताजीका शरीर छूटा था गुजरातमें और श्रीकील्हदेवजी थे मथुरामें—ऐसेमें श्रीकील्हदेवजीको पिताका दर्शन कैसे हुआ, यह मानसिंहके लिये आश्चर्यकी बात थी। उन्होंने तुरंत ही अपने दूतोंको गुजरात भेजकर सत्यताकी जानकारी की। श्रीकील्हदेवजीकी बात अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई, इससे राजा मानसिंहको इनपर बहुत ही श्रद्धा हो गयी।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीसुमेर देव पिता सूबे गुजरात हुते भयो तनुपात सो विमान चढ़ि चले हैं।
बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढिंग देखे नभ जात उठि कही भले भले हैं॥
पूछे नृप बोले कांसों ? कैसे कै प्रकासों, कहौ, कह्यौ हठ परे सुनि अचरज रले हैं।
मानुस पठाये सुधि ल्याए सांच आंच लागी कारी साष्टाङ्ग बात मानी भाग फले हैं॥ १२१॥

उनके संतत्वकी एक दूसरी घटना इस प्रकार है—एक बारकी बात है, आप अपने आराध्य प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजकी सेवा कर रहे थे। आपने माला निकालनेके लिये पिटारीमें जैसे ही हाथ डाला, वैसे ही उसमें बैठे एक विषधर सर्पने आपके हाथमें काट लिया। करुणाविग्रह आपने उस अपकारी सर्पपर भी दया की और उसे भूखा जानकर पुनः अपना हाथ पिटारीमें डाल दिया। इस प्रकार आपने तीन बार पिटारीमें हाथ डाला और सर्पने तीन बार काटा, चौथी बार वह स्वयं पिटारीसे बाहर चला गया। इस प्रकार आपने सर्पको भी अतिथि मानकर उसका सत्कार किया और उसकी क्षुधापूर्ति की। श्रीरामकृपासे उस विषधरके विषका आपपर कोई प्रभाव भी नहीं हुआ। सत्य है, जब भजनके प्रभावसे काल-व्यालका विष नहीं व्यापता तो लौकिक व्यालका विष क्या व्यापेगा!

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

ऐसे प्रभु लीन नहिं कालके अधीन बात सुनिये नवीन चाहैं रामसेवा कीजिये।
धरी ही पिटारी फूलमाला हाथ डार्‌यो तहाँ व्याल कर काट्यो कह्यो फेरि काटि लीजिये॥
ऐसे ही कटायो बार तीनि हुलसायो हियो कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिये।
करिकैं समाज साधु मध्य यौं विराज प्रान तजे दशैं द्वार योगी थके सुनि जीजिये॥ १२२॥

श्रीकील्हदेवजी महाराज सिद्ध सन्त थे, भविष्यकी बातें जान लेनेकी उनमें सामर्थ्य थी। जब उन्हें भगवद्धाम जाना हुआ तो पहलेसे ही सन्तोंके पास इस आशयका सन्देश भेज दिया और सन्तोंसे संकीर्तन करनेको कहा। संकीर्तन सुनते हुए ही आपने ब्रह्मरन्ध्रसे अपने प्राणोंका उत्क्रमण किया।

श्रीअग्रदासजी

सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आए।
सेवा सुमिरन सावधान (चरन) राघव चित लाए॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत मन बच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरि भजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो॥ ४१॥

श्रीस्वामी अग्रदासजीने भगवद्भजनके बिना क्षणमात्र भी समयको व्यर्थ नहीं बिताया। आपका वैष्णव सदाचार पूर्ववर्ती आचार्योंके समान ही था। आप सदा मानसी सेवा एवं प्रकट विग्रहसेवामें तथा भगवन्नामस्मरणमें सावधान रहते थे। सदा राघवेन्द्रसरकारके श्रीचरणोंमें मनको लगाये रहते थे। (सीताराम-विहार) प्रसिद्ध बागमें आपकी बड़ी प्रीति थी, उसे सींचने, बुहारने आदिकी सब सेवाएँ सदा आप अपने हाथसे ही करते थे। आपकी जिह्वासे परम पवित्र श्रीसीताराम नामकी ध्वनि इस प्रकार होती रहती थी, मानो मधुर गर्जनके साथ मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजीने परमकृपा करके मन-वचन-कर्मसे सम्बन्धित अचल भक्तिका भाव आपको प्रदान किया था॥ ४१॥

श्रीनाभादासजीके गुरुमहाराज श्रीअग्रदासजीका चरित संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत है—

महात्मा श्रीअग्रदासजी श्रीकृष्णदास पयहारीजी महाराजके शिष्य थे, जिन्होंने जयपुरमें गलता नामक प्रसिद्ध स्थानपर पधारकर तत्कालीन जयपुर-नरेशको वैष्णव बनाया और वहींपर पहाड़में धूनी स्थापित की, जो अभीतक चालू है। श्रीपयहारीजी महाराजके बड़े शिष्य श्रीकील्हने तो श्रीगुरुदेवके परमधामगमनके बाद गलताकी गद्दी सँभाली और अग्रदासजीने जयपुरके पास ही लगभग ३० मील दूर गोरयाँ स्टेशनके निकट रैवासा नामक स्थानपर गद्दी स्थापित की।

श्रीअग्रदासजीका प्रादुर्भाव फाल्गुन शु० २, सं० १५५३ वि० को राजस्थानके एक गाँवमें ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इनमें भक्तिके संस्कार बचपनसे ही विद्यमान थे, अतः अत्यन्त अल्पवयमें ही आपने घर छोड़कर श्रीपयहारीजी महाराजकी शरण ग्रहण कर ली। श्रीपयहारीजीने इन्हें योग्य जानकर श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी और उपासना-रहस्य एवं शरणागति-माहात्म्यका उपदेश दिया।

श्रीपयहारीजीकी ही भाँति श्रीअग्रदासजी भी सिद्ध सन्त थे। एक बारकी बात है, राजा मानसिंह कहीं युद्ध करने जा रहे थे। मार्गमें श्रीपयहारीजी महाराजका आश्रम पड़ता था। मानसिंहकी श्रीपयहारीजी महाराजपर बड़ी श्रद्धा थी, अतः वे अपनी दस हजार सेनाके साथ आश्रम आ गये और श्रीमहाराजजीके चरणोंमें प्रणिपात किया। श्रीपयहारीजी महाराजने मानसिंहको आशीर्वाद दिया और श्रीअग्रदासजीको सेनासहित राजाका अतिथ्य करनेको कहा। उस समय कुटीमें मात्र दस केले रखे थे, अग्रदासजी उन दस केलोंको लेकर आये। श्रीपयहारीजीने कहा—दस-दस केले सबको बाँट दो। श्रीअग्रदासजीने बिना कोई प्रश्न किये गुरु-आज्ञाका पालन किया और दस हजार लोगोंको दस-दस केले बाँट दिये, तब भी उनके हाथमें दस केले बचे ही रहे!

श्रीअग्रदासजी सन्तोंकी मण्डली लेकर भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार करनेके लिये भ्रमण किया करते थे।

एक बारकी बात है, आप सन्तमण्डली लेकर एक गाँवमें पहुँचे। वहाँका एक सेठ धनवान् होनेके साथ-साथ बड़ा भगवद्भक्त भी था। उसने सन्तमण्डलीसे रुकनेका आग्रह किया और एक माहतक बड़ी सेवा की। संयोगकी बात, जिस दिन सन्तलोग वहाँसे चलनेको हुए, उसी दिन उस सेठके पुत्रको एक विषधर सर्पने काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। सेठके यहाँ कुहराम मच गया। उस गाँवमें बहुतसे ऐसे भी लोग थे, जो सन्त-सेवा और भगवद्भक्तिको व्यर्थकी बात मानते थे। ऐसे द्वेषी और भगवद्विमुख लोगोंके लिये मौका मिल गया और वे कहने लगे कि 'देख लिया न इन साधुओंकी सेवाका फल।' यह बात जब श्रीअग्रदासजीके कानोंमें पड़ी तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सन्त-सेवा और भगवद्भक्तिकी महिमाको प्रकट करनेके लिये भगवच्चरणामृतकी कुछ बूँदें मृत बालकके मुखमें डालीं और अपने इष्टदेवका ध्यान किया। फिर क्या था! नींदसे जगेकी भाँति मृत बालकने आँखें खोल दीं। चारों ओर सन्त-भगवन्तकी जय-जयकार होने लगी। जो लोग सन्तोंकी निन्दा कर रहे थे, वे भी आकर चरणोंमें गिर पड़े और सदा-सदाके लिये भगवद्भक्त बन गये।

भक्तमालके रचनाकार परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराज श्रीअग्रदासजीके कृपापात्र थे और श्रीकील्हदेवजी महाराजके प्रति आपका अग्रजका भाव था। भगवती जगज्जननी जनकलली जानकीजीकी प्रिय सखी चन्द्रकलाके आप अवतार माने जाते हैं, अग्रअलीके नामसे आपने मधुररसोपासना और मधुर भावकी भक्ति की। अपने रेवासा आश्रमके पास ही आपने श्रीरामबाग और श्रीसियमनरंजिनीवाटिकाका निर्माण किया। रेवासा गाँवके लोगोंको पीनेके लिये जलकी समस्या थी, आपने अपना चिमटा गाड़कर पृथ्वीसे जलस्रोत प्रकट कर दिया, जो आज भी कुएँके रूपमें विद्यमान है।

श्रीप्रियादासजीने आपकी महिमा निम्न कवित्तमें प्रकट की है—

दरशन काज महाराज मानसिंह आयो छायो, बाग मांझ बैठे द्वार द्वारपाल हैं।
झारि कै पतौवा गये बाहिर लै डारिबे को, देखी भीर भार रहे बैठि ये रसाल हैं॥
आये देखि नाभाजू ने उठि साष्टांग करी, भरी जल आँखें चली अँसुवनि जाल हैं।
राजा मग चाहि हारि आनिकै निहारि नैन, जानी आप जानी भये दासनि दयाल हैं॥ १२३॥

एक बारकी बात है—जयपुरके राजा मानसिंह स्वामी श्रीअग्रदेवजीके दर्शन करनेके लिये आये। उस समय स्वामीजी बागमें ही थे। बागके द्वारपर राजाके द्वारपाल बैठ गये। अन्य कुछ व्यक्तियोंके साथ राजा बागके भीतर गये। इसी बीच स्वामीजी बागके सूखे पत्तोंको झाड़कर बाहर फेंकने गये। राजाके साथ आयी हुई भीड़भाड़को देखकर स्वामीजी लौटकर नहीं आये। बाहर ही बैठ गये और माधुर्यरसरूप श्रीस्वामीजी मधुर ध्यान-रसमें लीन हो गये। स्वामीजीको आया देखकर श्रीनाभाजी स्वामीजीके निकट आये और उन्होंने उनके प्रेममग्न स्वरूपका दर्शन करके उनको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीनाभाजीकी आँखें तर हो आयीं और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। राजाने बागमें देरतक बाट देखी, फिर उससे न रहा गया, हारकर वह भी वहीं आ गया और उसने स्वामीजीके दर्शन करके यह जाना कि श्रीरामचन्द्रजीने ही दासोंपर दया की है, वे ही श्रीअग्रदेवजीके रूपमें सामने विराजमान हैं॥ १२३॥

श्रीशंकराचार्यजी

उतसृंखल अग्यान जिते अनईस्वरबादी।
बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥

बिमुखनि को दियो दंड ऐंचि सन्मारग आने।
सदाचार की सींव बिस्व कीरतिहि बखाने॥
ईस्वरांस अवतार महि मरजादा माँड़ी अघट।
कलिजुग धर्मपालक प्रगट आचारज संकर सुभट॥ ४२॥

अधर्मप्रधान कलियुगमें वैदिक धर्मके रक्षक श्रीशंकराचार्यजीका अवतार हुआ। आप विधर्मियोंको शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाले वाक्-वीर थे। वैदिक मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले उद्दण्ड, ईश्वरको न माननेवाले बौद्ध, शास्त्रविरुद्ध तर्क करनेवाले जैनी और पाखण्डी आदि जो लोग भगवान्‌से विमुख थे, उन्हें आपने दण्ड दिया। भय दिखाकर शास्त्रार्थमें हराकर उन्हें बलात् खींचकर सनातन धर्मके मार्गपर ले आये। आप सदाचारकी सीमा अर्थात् बड़े सदाचारी थे। सारा संसार आपकी कीर्तिका वर्णन करता है। आप भगवान् शंकरके अंशावतार थे। पृथ्वीपर प्रकट होकर आपने वेदशास्त्रकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका इस प्रकार समर्थन और स्थापन किया कि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। वह अचल हो गयी॥ ४२॥

यहाँ श्रीशंकराचार्यजीका महिमामय चरित संक्षेपमें वर्णित है—

श्रीमदाद्यशंकराचार्यजी

शंकरावतार भगवान् श्रीशंकराचार्यके जन्मसमयके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है। कुछ लोगोंके मतानुसार ईसासे पूर्वकी छठी शताब्दीसे लेकर नवम शताब्दीपर्यन्त किसी समय इनका आविर्भाव हुआ था, जबकि कुछ लोग आचार्यपादका जन्मसमय ईसासे लगभग चार सौ वर्ष पूर्व मानते हैं। मठोंकी परम्परासे भी यही बात प्रमाणित होती है। अस्तु, किसी भी समय हो, केरल प्रदेशके पूर्णा नदीके तटवर्ती कलान्दी नामक गाँवमें बड़े विद्वान् और धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्रीशिवगुरुकी धर्मपत्नी श्रीसुभद्रा* माताके गर्भसे वैशाख शुक्ल पंचमीके दिन इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। इनके जन्मके पूर्व वृद्धावस्था निकट आ जानेपर भी इनके माता-पिता सन्तानहीन ही थे। अतः उन्होंने बड़ी श्रद्धाभक्तिसे भगवान् शंकरकी आराधना की। उनकी सच्ची और आन्तरिक आराधनासे प्रसन्न होकर आशुतोष देवाधिदेव भगवान् शंकर प्रकट हुए और उन्हें एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्ररत्न होनेका वरदान दिया। इसीके फलस्वरूप न केवल एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र ही, बल्कि स्वयं भगवान् शंकरको ही इन्होंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया। नाम भी उनका शंकर ही रखा गया।

बालक शंकरके रूपमें कोई महान् विभूति अवतरित हुई है, इसका प्रमाण बचपनसे ही मिलने लगा। एक वर्षकी अवस्था होते-होते बालक शंकर अपनी मातृभाषामें अपने भाव प्रकट करने लगे और दो वर्षकी अवस्थामें मातासे पुराणादिकी कथा सुनकर कण्ठस्थ करने लगे। तीन वर्षकी अवस्थामें उनका चूडाकर्म करके उनके पिता स्वर्गवासी हो गये। पाँचवें वर्षमें यज्ञोपवीत करके उन्हें गुरुके घर पढ़नेके लिये भेज दिया गया और केवल सात वर्षकी अवस्थामें ही वेद, वेदान्त और वेदांगोंका पूर्ण अध्ययन करके वे घर वापस आ गये। उनकी असाधारण प्रतिभा देखकर उनके गुरुजन आश्चर्यचकित रह गये।

गुरुकुलनिवासकालकी बात है, बालक शंकर भिक्षाटन करते हुए एक निर्धन ब्राह्मणीके घर गये। उस बेचारीके घर अन्नका एक दाना भी नहीं था। कहींसे उसे एक आँवलेका फल मिला था, उसीको उसने ब्रह्मचारी शंकरको दिया और घरमें कुछ न होनेके कारण अन्न देनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। उस

* कहीं-कहीं इनका नाम 'विशिष्टा' भी मिलता है। सम्भवतः दो नाम रहे हों।

माहिष्मतीमें मण्डनमिश्रके पास जाकर शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थमें मण्डनकी पत्नी भारती मध्यस्था थीं। शास्त्रार्थमें शंकराचार्यजीने मिश्रजीको हरा दिया, तब भारतीने कहा कि मुझ अर्धांगिनीको हराये बिना आप विजयी नहीं हो सकते। तब आपने भारतीसे शास्त्रार्थ किया। उसने रतिशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न किये, उनके उत्तरके लिये इन्होंने छः मासका समय माँगा और अपने शिष्योंसे कहा कि मैं मृत राजा अमरुकके शरीरमें प्रवेशकर श्रृंगार रसका अध्ययन करूँगा। तबतक मेरे भौतिक शरीरकी रक्षा करना। यदि वहाँसे वापस लौटनेमें मुझे विलम्ब हो जाय तो मेरे पास आकर मुझे मोहमुद्गरके श्लोक सुनाना। उस राजा अमरुकके मृत शरीरमें प्रवेशकर शंकराचार्यजीने रतिशास्त्रका अध्ययन किया। तत्पश्चात् उनके शिष्योंने मोहमुद्गरके श्लोक उन्हें सुनाये और वे राजा अमरुकका शरीर छोड़कर पुनः अपने शरीरमें आ गये तथा भारतीके प्रश्नोंका उत्तर दे उसे निरुत्तर किया। अन्तमें मण्डनमिश्रने शंकराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनका नाम सुरेश्वराचार्य पड़ा। इससे आपकी ख्याति बहुत फैल गयी।

एक बारकी बात है, शास्त्रार्थमें आपने सेवड़ों (प्रतिपक्षियों)-को परास्त किया, पराजित सेवड़ा लोग अपने राजाके पास पहुँचे। राजाने सेवड़ोंकी बात नहीं मानी, तब सेवड़ोंको यह भय सताने लगा कि कहीं हमारा राजा शंकराचार्यका शिष्य न बन जाय, अतः उन्होंने राजा तथा शंकराचार्यको मार डालनेका एक षड्यन्त्र रचा। सेवड़ोंका गुरु राजा एवं शंकराचार्यको लेकर एक ऊँची छतपर चढ़ गया और उसने तन्त्र-बलसे ऐसी माया रची कि चारों ओर जल ही जल हो गया। धीरे-धीरे जल बढ़ता हुआ छततक आ गया। सेवड़ोंके गुरुने मायाकी नाव भी बना दी और राजासे कहा कि इसपर चढ़ जाओ, नहीं तो जलमें डूब जाओगे। राजा जैसे ही नावपर चढ़ने लगे शंकराचार्यजीने उन्हें नावपर बैठनेसे मना कर दिया और पहले सेवड़ोंको चढ़ानेको कहा। सेवड़े जैसे ही नावपर चढ़े, मायाकी नाव और जल गायब हो गया और वे लोग छतसे नीचे गिर गये। उन सेवड़ोंके शरीर भग्न हो गये। राजा उनकी चाल और शंकराचार्यजीका प्रभाव समझ गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े।

श्रीप्रियादासजी महाराज इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बिमुख समूह लैके किये सनमुख स्याम, अति अभिराम लीला जग बिसतारी है।
सेवरा प्रबल वास केवरा ज्यौं फैलि रहे, गहे नहीं जाहिं बादी सुचि बात धारी है॥
तजिकै शरीर काहू नृपमें प्रवेश कियो, दियौ करि ग्रन्थ मोह मुद्गर सुभारी है।
शिष्यनि सों कह्यौ कभूं देहमें आवेश जानो तब ही बखानो आप सुनि कीजै न्यारी है॥ १२४॥
जानिकै आवेश तन शिष्यने प्रवेश कियो रावलेमें देखि सो श्लोक लै उचार्‌यौ है।
सुनत ही तज्यौ तन निज तन आय लियौ कियो यों प्रनाम दास पन पूरो पार्‌यौ है॥
सेवरा हराये बादी आये नृप पास ऊँचे छातपर बैठि एक माया फन्द डार्‌यौ है।
जल चढ़ि आयो नाव भाव लै दिखायौ कहैं चढ़ौ नहीं बूड़ौ आप कौतुक सो धार्‌यौ है॥ १२५॥
आचारज कही यों चढ़ाओ इन सेवरानि राजाने चढ़ाये गिरे टूक उड़ि गये हैं।
तब तौ प्रसन्न नृप पाँव पर्‌यौ भाव भर्‌यौ कह्यौ जोई कर्‌यो धर्म भागवत लये हैं॥
भक्ति ही प्रचार पाछै मायावाद डारि दीनों कीनों प्रभु कह्यौ किते विमुख हू भये हैं।
ऐसे सो गँभीर सन्त धीर वह रीति जानें प्रीति ही में साने हरिरूप गुन नये हैं॥ १२६॥

तत्पश्चात् आचार्यने विभिन्न मठोंकी स्थापना की और उनके द्वारा औपनिषद सिद्धान्तकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी।

आचार्यने अनेक मन्दिर बनवाये, बहुतसे लोगोंको सन्मार्गमें लगाया और कुमार्गका खण्डन करके भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको प्रकट किया। आपने भारतवर्षके चारों कोनोंपर चार मठोंकी स्थापना की और वहाँ अपने शिष्योंको नियुक्त किया। पूर्वमें श्रीजगन्नाथपुरी (उड़ीसा)-में गोवर्धन मठ, दक्षिणमें शृंगेरी मठ, पश्चिममें द्वारकापुरीमें शारदामठ और उत्तरमें ज्योतिर्मठकी आपने स्थापना की। इन मठोंके मठाधीश आज भी श्रीमद् आद्य शंकराचार्यके नामपर शंकराचार्य कहे जाते हैं।

यद्यपि आपका लौकिक जीवनकाल अत्यन्त अल्प मात्र ३२ वर्ष ही रहा, परंतु इतने कम समयमें ही आपने छोटे-बड़े २६२ ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता)-पर भाष्य ही आपके यशको अमर रखनेमें पर्याप्त हैं।

श्रीनामदेवजी

बालदसा बीठल्ल पानि जाके पय पीयौ।
मृतक गऊ जीवाय परचौ असुरन कौं दीयौ॥
सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होती।
देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती॥
पँडुरनाथ कृत अनुग ज्यों छानि स्वकर छइ घास की।
नाम देव प्रतिग्या निर्बही (ज्यों) त्रेता नरहरिदास की॥ ४३॥

जल-थल और अग्नि आदिमें सर्वत्र अपने इष्टका ही दर्शन करूँगा—यह प्रतिज्ञा श्रीनामदेवजीकी उसी प्रकार निभी, जैसे कि त्रेतायुगमें नरसिंहभगवान्‌के दास श्रीप्रह्लादजीकी निभी थी। बचपनमें ही उनके हाथसे विट्ठलनाथभगवान्‌ने दूध पिया। एक मरी हुई गायको आपने जीवित करके असुर-यवनोंको अपने भजनबलका परिचय दिया। फिर उस यवन राजाके द्वारा दी गयी शय्याको नदीके अथाह जलमें डाल दिया। उसके आग्रहपर उसी तरहकी अनेक शय्याएँ निकालकर दिखा दीं। पण्ढरपुरमें पण्ढरीनाथभगवान्‌के मन्दिरका द्वार उलटकर आपकी ओर हो गया, इस चमत्कारको देखकर मन्दिरके पुजारी सभी श्रोत्रिय ब्राह्मणलोग संकुचित और लज्जित हो गये। प्रेमके प्रभावसे पण्डरनाथभगवान् आपके पीछे-पीछे चलनेवाले सेवककी तरह कार्य करते थे। आगसे जल जानेपर अपने हाथोंसे भगवान्‌ने आपका छप्पर छाया॥ ४३॥

(क) नामदेवजीके जन्मकी दिव्य घटना

नामदेवजीके प्रादुर्भावकी घटनाका श्रीप्रियादासजी निम्न प्रकारसे वर्णन करते हैं—

छीपा वामदेव हरिदेव जू को भक्त बड़ो ताकी एक बेटी पतिहीन भई जानिये।
द्वादश वरष मांझ भयो तब कही पिता सेवा सावधान मन नीके करि आनिये॥
तैरे जे मनोरथ हैं पूरन करन एई जो पै दत्तचित्त ह्वै कै मेरी बात मानिये।
करत टहल प्रभु बेगि ही प्रसन्न भये कीनी काम वासना सु पेखि उनमानिये॥ १२७॥
विधवा को गर्भ ताकी बात चली ठौर ठौर दुष्ट शिरमौरनि की भई मन भाइयै।
चलत चलत वामदेव जू के कान परी करी निरधार प्रभू आप अपनाइयै॥
भये जू प्रगट बाल नाम नामदेव धर्‌यौ कर्‌यौ मन भायो सब सम्पति लुटाइयै।
दिन दिन बढ्‌यो कछू और रंग चढ्‌यो भक्तिभाव अंग मढ्‌यो कढ्‌यो रूप सुखदाइयै॥ १२८॥

(ख) श्रीनामदेवजीके बचपनके भक्तिमय चरित

श्रीनामदेवजी बचपनमें खिलौनोंसे खेलते थे, आप खेलमें ही भगवान्‌की सेवा-पूजा करते थे, वे किसी काष्ठ या पाषाणकी मूर्ति बना लेते और फिर उसे बड़े प्रेमसे वस्त्र पहनाते, भोग लगाते, घण्टा बजाते तथा नेत्र बन्द करके मनमें अच्छी तरह भगवान्‌का ध्यान करते। वे जैसे-जैसे इन कार्योंको करते थे, वैसे-वैसे वे अत्यन्त सुख पाते थे। प्रेमवश उनके नेत्रोंमें जल भर जाता। नामदेवजी अपने नाना वामदेवजीसे बार-बार कहते कि भगवान्‌की सेवा मुझे दे दीजिये। सेवा मुझे बहुत प्यारी लगती है। इस प्रकार नामदेवजीने बार-बार कहा। कुछ समय बाद वामदेवजीने नामदेवसे कहा कि मैं एक गाँवको जाऊँगा और तीन दिनमें लौट आऊँगा, तबतक तुम भगवान्‌की सेवा करना और भगवान्‌को दूध पिलाना, स्वयं मत पी जाना। यदि अच्छी प्रकारसे तीन दिन सेवा करोगे तो तुम्हें ही सेवा सौंप दी जायगी।

श्रीनामदेवजीके हृदयमें सेवा प्राप्त करनेकी लालसा बढ़ी, वे नानाजीसे बार-बार पूछते कि अभी आप गये नहीं? एक दिन नानाजीके बाहर गाँव जानेका समय आ गया, वे चले गये। नामदेवजीने अच्छी तरह देखभालकर कड़ाहीमें दो सेर दूध डाला और मनमें निश्चय किया कि दूधको औटाकर अति उत्तम बनाऊँ, जिससे प्रसन्न होकर प्रभु पी लें। श्रीनामदेवजीके हृदयमें प्रेमकी बड़ी भारी उमंग थी, उन्हें चिन्ता भी थी कि सेवामें कोई त्रुटि न हो जाय।

बालक नामदेवजी दूध औटाकर उसे एक सुन्दर कटोरेमें भरकर भगवान्‌के समीप ले आये। दूधमें इलायची और मिश्री मिलायी। दूध पिलानेकी आशासे परदा कर दिया। कुछ देर प्रेमकी लम्बी श्वासें भरते रहे फिर परदा हटाकर देखा तो दूधभरा कटोरा ज्यों-का-त्यों रखा था। इससे इनके मनमें बड़ी निराशा हुई और भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे कि प्रभो! आप दूध पीकर तृप्त हो जायँ।

श्रीनामदेवजी भगवान्‌को दूध-भोग लगाते और यह देखते कि भगवान्‌ने दूध नहीं पिया है, इस प्रकार दो दिन बीत गये। स्वयं भी उन्होंने अन्न-जल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया और इस बातको अपने मनमें ही छिपाकर रखा। माताजीको भी नहीं बताया और भूखे-प्यासे ही रातको सो गये, पर चिन्ताके कारण निद्रा नहीं आयी। तीसरे दिनका सबेरा हुआ, फिर उसी प्रकार सावधानीसे दूधको औटाया इलायची, मिश्री मिलायी और आज प्रभु अवश्य ही दूध पी लेंगे—इस भावसे मनको मजबूत करके भगवान्‌के सामने दूध रखा और कहा—प्रभो! (नानाजी दूध पिलानेको कह गये थे) आप दूधको पीजिये, तभी मैं प्रसन्न होऊँगा। इतनेपर भी जब भगवान्‌ने दूध नहीं पिया, तब श्रीनामदेवजी बोले—मैं बारम्बार आपसे दूधकी विनती करता हूँ, परंतु आप दूध नहीं पीते हैं। कल प्रातःकाल नानाजी आ जायँगे और वे हमपर रुष्ट होंगे, फिर कभी सेवा मुझे नहीं देंगे। इसलिये ऐसे जीनेसे तो मरना ही अच्छा है। ऐसा कहकर छुरी निकाली और भगवान्‌को दिखाकर अपना गला काटनेके लिये गलेपर छुरी चलाना ही चाहते थे कि भगवान्‌ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि अरे! ऐसा मत करो, मैं अभी दूध पीता हूँ। यह कहकर भगवान् दूध पीने लगे। श्रीनामदेवजीने देखा कि ये तो सब दूध पी जायँगे, तब बोले कि थोड़ा-सा प्रसाद मेरे लिये भी रहने दीजियेगा; क्योंकि नानाजीके भोग लगानेपर मैं सदा दूध-प्रसाद पीता था।

चौथे दिन वामदेवजी गाँवसे लौटकर आये और नामदेवजीसे 'अच्छी प्रकार सेवा की या नहीं' यह पूछा तो इन्होंने अत्यन्त प्रेमरंगमें भरकर दुग्धपानलीलाका सारा वर्णन किया। यह सुनकर वामदेवजीने कहा कि मेरे सामने फिर पिलाओ, तब हम जानें। तब श्रीनामदेवजीने उसी प्रकार दूध तैयार करके भगवान्‌के सामने रखा, पर भगवान्‌ने नहीं पिया, तब अड़ गये उसी प्रकार छुरी निकालकर गला काटनेको तैयार हो गये कि कल पीकर आज नानाजीके सामने मुझे झूठा बनाना चाहते हो। आपको दूध

पीना ही पड़ेगा। बालकके प्रेमहठसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने वामदेवजीके देखते-देखते दूध पिया और प्रसाद नामदेवको पिलाया। वामदेवजीने सोचा कि मैंने जीवनभर सेवा की, पर दर्शन नहीं हुए। आज बालकके प्रभावसे दर्शन हुए। इस प्रसंगके द्वारा भगवान्‌ने यह दिखला दिया कि मैं भक्तके वशमें होकर उसके प्रेमके कारण अर्पित भोगको ग्रहण करता हूँ।

श्रीप्रियादासजीने नामदेवजीके इस प्रेमभावका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है—

खेलत खिलौना प्रीति रीति सब सेवा ही की पट पहिरावैं पुनि भोगको लगावहीं।
घंटा लै बजावैं नीके ध्यान मन लावैं त्यों-त्यों अति सुख पावैं नैन नीर भरि आवहीं॥
बार-बार कहैं नामदेव वामदेव जू सों देवो मोहिं सेवा मांझ अति ही सुहावहीं।
जाऊँ एक गाँव फिरि आऊँ दिन तीन मध्य दूधको पिवावौ मत पीवो मोहि भावहीं॥ १२९॥
कौन वह बेर जेहिं बेर दिन फेर होय फेर फेर कहैं वह बेर नहीं आइये।
आई वह बेर लै कराहीं मांझ हेरि दूध डार्‌यो युग सेर मन नीके कै बनाइये॥
चोपनिके ढेर लागि निपट औसेर दृग आयो नीर घेरि जिनि गिरें घूंटि जाइये।
माता कहै टेरि करी बड़ी तैं अबेर अब करो मति झेरि अजू चित दै औटाइये॥ १३०॥
चल्यो प्रभु पास लै कटोरा छबिरास तामें दूध सो सुबास मध्य मिसरी मिलाइयै।
हिये में हुलास निज अज्ञताको त्रास ऐपै करैं जो पै दास मोहि महासुख दाइयै॥
देख्यो मृदुहास कोटि चांदनी को भास कियो भावको प्रकास मति अति सरसाइयै।
प्याइबेकी आस करि ओट कछु भर्‌यो स्वास देखिकै निरास कह्यो पीवो जू अघाइयै॥ १३१॥
ऐसे दिन बीते दोय राखी हिये बात गोय रह्यो निशि सोय ऐपै नींद नहीं आवहीं।
भयो जू सबेरो फिरि वैसे ही सुधार लियौ हियौ कियौ गाढ़ौ जाय धर्‌यो पियो भावहीं॥
बार बार पीवो कहूं अब तुम पीवो नाहिं आवैं भोर नाना गरे छूरी दै दिखावहीं।
गहि लीनो कर जिनि करें ऐसो पीवौं मैं तो पीवे कों लगेई नेकु राखो सदा पावहीं॥ १३२॥
आये वामदेव पाछै पूछैं नामदेव जू सों दूधको प्रसंग अति रंग भरि भाखियै।
मोसौं न पिछानि दिनदोय हानि भई तब मानि डर प्रान तज्यो चाहौं अभिलाषियै॥
पीयौ सुख दीयो जब नेकु राखि लीयो मैं तो जीयो सुनि बातें कही प्यायो कौन साखियै।
धर्‌यौ पै न पीयैं अर्‌यौ प्यायौ सुख पायौ नाना यामें लै दिखायौ भक्तबस रस चाखियै॥ १३३॥

(ग) श्रीनामदेवजीकी भगवद्भक्ति और गोभक्ति

एक बार मुसलमानोंके राजा सिकन्दर लोदीने श्रीनामदेवजीको बुलवाकर कहा कि आप साहबसे मिले हैं, उनका दर्शन करते रहते हैं—ऐसा मैंने सुना है तो हमें भी साहबसे मिला दीजिये और कुछ विचित्र चमत्कार दिखलाइये। श्रीनामदेवजीने कहा कि यदि हममें कोई शक्ति या चमत्कार होता तो फिर खानेके लिये दिनभर धंधा ही क्यों करते? किसी प्रकार दिनभर धंधा (सिलाई-छपाई) करनेसे जो भी कुछ मिल जाता है, उसे सन्तोंके साथ बाँटकर खाता हूँ। उन्हीं संतोंकी सेवाके प्रतापसे लोग मुझे भक्त कहते हैं और दूर-दूरतक मेरा नाम फैल गया है, तभी आपने भी हमें यहाँ अपने दरबारमें बुलाया है। यह सुनकर बादशाहने कहा—आप इस मरी हुई गायको जीवित कर दीजिये और अपने घरको जाइये, नहीं तो कारागारमें रहना पड़ेगा; क्योंकि तुम झूठे भगत बनकर लोगोंको ठगते हो। तब आपने सहज स्वभावसे एक प्रार्थनाका पद* गाकर गायको जीवित कर दिया और प्रभुकृपाका अनुभव